ओ३म्

वैदिक-प्रसून

भारत नव जागरण के पुरोधा

महर्षि दयानन्द

ओ३म्
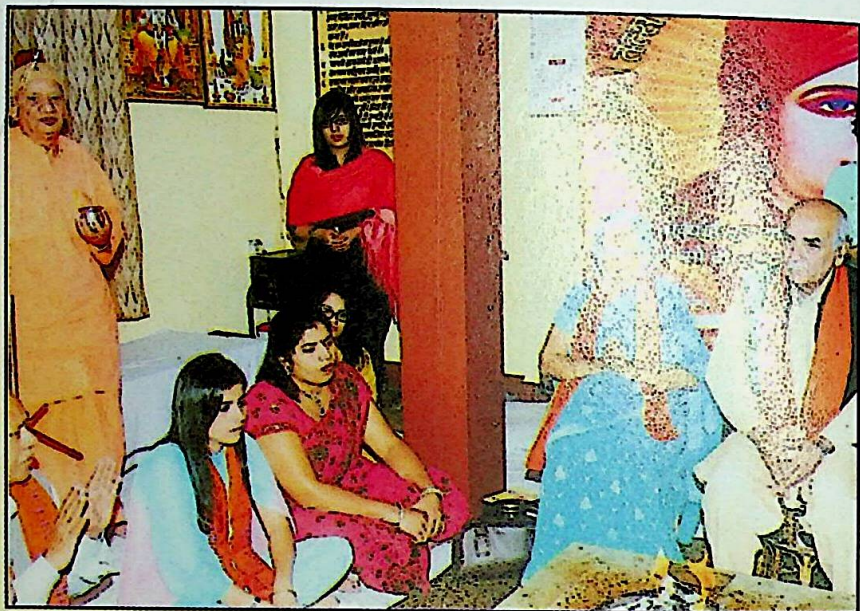
५०वीं वैवाहिक वर्षगाँठ पर

स्मृतिशेष डॉ० सावित्री देवी वेदाचार्य तथा आचार्या सूर्या देवी वाराणसी द्वारा आशीर्वाद देते हुए

डॉ विजया शर्मा

आशीर्वचन

लघु पुस्तिका "वैदिक प्रसून" माता कृष्णा बजाज द्वारा संकलित एवं स्वलिखित उत्तम लेखावली है। कृष्णा जी आर्यसमाज की एक सजग कार्यकर्त्री हैं। आपका जीवन सामाजिक कार्यों में संलग्न रहता है। आप स्वाध्यायशील एवं दार्शनिक चिन्तक हैं। महर्षि मिशन के लिए आप समर्पित हैं। आपके दीर्घ आयु एवं स्वास्थ्य के प्रति प्रभु से कामना करता हूँ। साथ ही पुस्तिका प्रकाशक जी (राजेन्द्र कुमार जी) को भी साधुवाद देता हूँ जो सतत् आर्य साहित्य के प्रसार व प्रचार कार्यों में लगे हैं।

मो. ०९४१२३७२१७९
०९७५९५२७४८५

शुभेच्छु :
स्वामी ब्रह्मनन्द सरस्वती (वेदभिक्षु)

प्रकाशकीय

हम यह लघु पुस्तिका "वैदिक-प्रसून" अपने संस्थान के सप्तम् पुष्प के रूप में प्रकाशित कर निःशुल्क जन-मानस के स्वाध्यायं हेतु प्रस्तुत कर रहे हैं।

प्रस्तुत पुस्तिका में बरेली निवासी श्रीमती कृष्णा बजाज द्वारा रचित/ संग्रहीत कुछ प्रेरणा-दायक लेख हैं। आपके लेख 'टंकारा समाचार एवं कविताएँ लोक वार्ता' लखनऊ में प्रकाशित होते रहे हैं। आप सचमुच एक विदुषी ऋषिभक्त महिला हैं। सिद्धान्त विरुद्ध कहीं भी कार्य होते देखकर आप निर्भीकता से उसका प्रतिवाद करती हैं। आपने बाल्यकाल में १२ वर्ष की आयु से ही अपने पिताश्री की प्रेरणा से आर्य समाज के सत्संग में नियमित रूप से सम्मिलित होना एवं सक्रिय सहयोग करना प्रारभ कर दिया था। आप अपने जीवन में जिन संस्थाओं के सम्पर्क में आयीं, उस संस्था को प्रगति के उत्तम सोपान पर लाकर खड़ा कर दिया। बरेली में आपने आर्यसमाज अनाथालय में अधिष्ठात्री के पद पर वर्षों सेवा कार्य किया। अनाथालय की संवासनियों से आपका स्नेहयुक्त पारिवारिक सम्बन्ध बन गया। महिला समाज बिहारीपुर, बरेली आपके प्रधानत्व में गरिमा को प्राप्त हुआ। सम्प्रति आप आर्यसमाज मॉडल टाउन की संरक्षिका हैं। अपनी रुग्ण अवस्था में भी आप आर्य समाज के सत्संगों में, विशेष कार्यक्रम में सम्मिलित होना अपना कर्त्तव्य समझती हैं।

इस पुस्तक का निःशुल्क वितरण उनके सुयोग्य मातृ-पितृ भक्त चि० राजीव, चि० संदीप एवं चि० विशाल बजाज के सौजन्य से हुआ है जिसके लिए वे साधुवाद के पात्र हैं। पुस्तक के नामकरण एवं प्रूफ रीडिंग में डॉ० पूरन लाल वर्मा, बरेली का विशेष सहयोग रहा इसके लिए हम उनके आभारी हैं।

भवदीय :
राजेन्द्र कुमार
व्यवस्थापक-वैदिक साहित्य केन्द्र
बरेली एवं लखनऊ

दिनाङ्क : ७ अगस्त २०१३
मो. ९८९७८८०९३०

समर्पण

अपनी यह लेखमाला, मैं अपने
श्वसुर स्व० चमन लाल बजाज तथा सासु स्व० केसर बाई
एवं
अपने पिता स्व० गोपीचन्द महाशय एवं माता स्व० गुरुदेवी
की स्मृति में समर्पित करती हूँ
जिनके आशीष वचनों से मैं ईश्वरानुरागी,
वैदिक धर्म में पूर्ण आस्था रखने वाली,
ऋषि के आदर्शों और सिद्धान्तों को जीवन में अपनाने
का यथासम्भव प्रयास करने में समर्थ हो पायी।

— कृष्णा बजाज

मनुष्य जब कोई प्रशंसनीय कार्य करता है तो वह चाहता है कि उसकी प्रशंसा में कोई दो शब्द कहे, पर प्रशंसा कौन करे ? सामाजिक लोग तो डाह करते हैं वे यदि साधुवाद देते भी हैं तो ऊपरी मन से देते हैं, साधुवाद में भी उनका स्वार्थ छिपा रहता है। वे चाहते हैं जिसे हम बधाई दे रहे हैं। वह हमारे प्रति कृतज्ञ हो। अतः उसे सांसारिक जनों के साधुवाद की कोई लालसा नहीं रही है, मैं केवल इतना चाहती हूँ कि मेरे अन्तःकरण में बैठा प्रभु उस कार्य के लिए प्रशंसा वचन बोलता हुआ मुझे प्रोत्साहित करे। सुखदाता होने का अभिमान करने वाले सैकड़ों हैं। प्रभु का आशीर्वाद सच्चा आशीर्वाद है वे 'शविष्ठ' है वे 'मण्डिता' है शरणागत पर सुख की वर्षा करते हैं। प्रभु के सुख के आगे सांसारिक जनों के दिये हुए सुख निःसार हैं तुच्छ हैं।

—ऋग्वेद १.८४.१९

प्राक्कथन
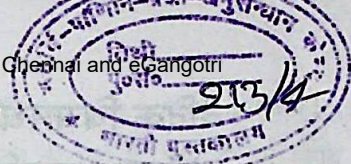
परमपिता परमात्मा की असीम कृपा व प्यारे महर्षि देव दयानन्द द्वारा नारी जाति को सुशिक्षित व सम्मानित बनाने के प्रयास द्वारा मैंने कुछ लेख बहुत समय पहले संकलित किए व स्वयं लिखे थे। लेख मैंने 'संस्कार चन्द्रिका', 'भारतीय विचारधारा का वैज्ञानिक सिद्धान्त' तथा कुछ धार्मिक पत्रिकाओं से और कुछ श्रेष्ठ विद्वानों के प्रवचनों द्वारा संकलित किए, मैं उन सभी लेखकों का व विद्वानों का आभार व्यक्त करती हूँ और किसी प्रकार की भाषा की त्रुटि के लिए मैं स्वयं जिम्मेदार हूँ। मेरी माता स्व० गुरुदेवी एवं पिता महाशय गोपीचन्द जी ने बाल्यावस्था में ही वैदिक विचारधारा की अमिट छाप मुझ पर छोड़ी जिस कारण ऋषि के सिंद्धान्तों व विचारों के विपरीत चलना व अन्यों को चलते देखना मेरे लिए असहनीय है। बाल्यावस्था से ऋषि के ऋणों से उऋण होने का प्रयास कर रही हूँ अन्यथा मैं भी अज्ञानता के किसी अन्धेरे कोने में सारहीन वस्तु की तरह पड़ी होती। इसी कारण आज आर्य जगत में व्याप्त प्रमाद, आलस्य व भ्रान्तियों के कारण मैंने अपने लेखों में अपने हृदय की पीड़ा व्यक्त की है। 'पूजा में नारियल का महत्त्व' लेख में मैंने अपनी बुद्धि के अनुसार मानव के शरीर से तुलना करने का प्रयास किया है। यह लेख पौराणिक विचारधारा का भासित होता है मगर मैंने ब्रह्माण्ड के लघु रूप मनुष्य के साथ - अलंकार रूप में इसकी उपयोगिता व गुणवत्ता का वर्णन किया है। कई विद्वानों द्वारा विचार-विमर्श उपरान्त ही इसे पुस्तक में स्थान दिया। आप इसे इसकी गुणवत्ता व उपयोगिता की दृष्टि से ही पढ़े। मेरे किसी भी लेख द्वारा किसी व्यक्ति विशेष के हृदय को ठेस पहुँचे तो मैं क्षमाप्रार्थी हूँ। मैं अपने पैतृक परिवार तथा अपने पति के परिवार और अपनी सुयोग्य सन्तानों की भी आभारी हूँ जिन्होंने मुझे विवाहोपरान्त शिक्षा ग्रहण करने व अपने वैदिक विचारधारा को अक्षुण्ण रखने में सहयोग दिया। विशेषतया अपने पति श्री सत्यपाल बजाज की भी आभारी हूँ जिन्होंने कठिन परिस्थितियों में तथा समय व धन के अभाव में भी मुझे आर्य उत्सवों व सामाजिक कार्यों व दूसरों की सहायता करने में हर सम्भव सहयोग दिया। मेरे प्रेरणा स्रोत वही हैं। परमपिता की अपार कृपा से समाज में रहते हुए सभी आर्य बन्धुओं से मुझे मान व सम्मान के साथ हर कार्य में सहयोग भी मिलता है। यही मेरा सौभाग्य है परमात्मा से यही प्रार्थना है कि जीवन के अन्तिम श्वास तक ऋषि का गुणगान करती रहूँ। पुनः सभी का धन्यवाद !

आचार्य अवनीन्द्र शास्त्री द्वारा प्राप्त उत्साहवर्धन हेतु मैं उनकी हृदय से आभारी हूँ !

आपकी :

कृष्णा बजाज
कृपाल इन्क्लेव, बरेली

मो. ८७६१६६४२६६

वैदिक विचारधारा में संस्कारों का महत्त्व
संस्कार पद्धति का दार्शनिक विवेचन
(संस्कार चन्द्रिका से साभार)

संस्कार का अर्थ :-

किसी वस्तु के रूप को बदलकर उसे नया रूप देना। जनता की भाषा में संस्कार उन भिन्न कृत्यों का नाम है, जो किसी व्यक्ति के जीवन में समय-समय पर हुआ करते हैं। वैदिक संस्कृति में १६ संस्कारों के विधान में मानव को जीवन में १६ बार बदलने का अवसर दिया गया है। जैसे सुनार अशुद्ध सोने को अग्नि में डालकर उसका संस्कार करता है उसी प्रकार मानव (बालक) के उत्पन्न होते ही उसे संस्कारों की भट्टी में डालकर उसका संस्कार करता है, अर्थात् उसके दुर्गुणों को निकालकर उसमें सद्गुण डालने के प्रयत्न को वैदिक विचारधारा में संस्कार कहा जाता है।

संस्कार मानव के नव निर्माण की योजना है। बालक जब जन्म लेता है तो दो प्रकार के संस्कार अपने साथ लेकर आता है। एक वे संस्कार जिन्हें वह जन्म जन्मान्तरों से अपने साथ लाता है, दूसरे प्रकर के वे संस्कार जिन्हें वह अपने माता-पिता के संस्कारों को वंश परम्परा के रूप में लेता है, वे अच्छे भी हो सकते हैं बुरे भी हो सकते हैं। बालक को संस्कारों के माध्यम से ऐसे पर्यावरण से घेर लिया जाता है जिससे अच्छे संस्कार तो पनपें मगर वह सभी बुरे संस्कार चाहे वे जन्म जन्मान्तरों के हों अथवा माता-पिता से मिले हों और चाहे इस जन्म में पड़ने वाले हों उन्हें निर्बीज कर दिया जाता है।

हमारी योजनाएँ भौतिक योजनाएँ हैं, हम नहरें निकालते हैं बाँध बाँधते हैं जिससे देश उन्नति कर सके। हमारी दृष्टि आधिभौतिक जगत तक सीमित है, इस भौतिक दृष्टिकोण के कारण हम समझे बैठे हैं कि मानव का सबसे बड़ा प्रश्न रोटी का है यह प्रश्न हल हो गया तो दुनिया के सभी प्रश्न हल हो जायेंगे, हमारी समझ में मानव केवल भूख प्यास का पुतला है। वैदिक विचारधारा मानव को शरीर मात्र नहीं मानती, नहरें बनाना, बाँध बनाना, सड़क व रेलों के जाल बिछाना, यह भी आवश्यक है जिस मानव की सुख सुविधा और समृद्धि के लिए ये योजनाएँ चलायी जा रही हैं वह मानव कहाँ है ? मानव अगर सच्चा न हो, ईमानदार न हो, दूसरों के दुःख में दुःखी और सुख में सुखी न होने वाला हो, दुराचारी, भ्रष्टाचारी व व्यभिचारी हो तो

ये रेल पटरियाँ, नहरें, बाँध किस काम आयेंगे ? उस मानव का जिसके लिए यह सम्पूर्ण वैभव खड़ा किया है, उसका दिनोदिन पतन हो रहा है, कहाँ है वह मानव जिसमें मानवता हो ? वह मानव जो प्रलोभनों के प्रचण्ड बवण्डर को तिनके की तरह फेंक दें।

कृषकों ने भूमि को उर्वरा बनाया, अच्छे बीजों को उपलब्ध किया, खराब चीजों को फेंक दिया। ये सब कृषक के द्वारा किये गये कार्य संस्कार हैं। शास्त्रकारों के अनुसार मनुष्य प्रकृति का सबसे सुन्दर व्यक्ति है इससे यह सिद्ध नहीं होता कि सभी मनुष्यों में समान प्रतिभा है, प्रायः मनुष्य का स्वभाव भी पशुओं और पक्षियों के समान होता है। सभ्य देशों में कुत्तों तथा अन्य पशुओं को सुदृढ़ और उपयोगी बनाने का बड़ा प्रयत्न किया जाता है। पशुओं के विशेषज्ञ जानते हैं कि किस प्रकार गाय बच्चा दे, उसका पालन हो और उसे कैसे रोग मुक्त रखा जाये, सरकार की ओर से पशु विभाग (Veterinary Dept) स्थापित है वे डाक्टर निर्बल गाय और बैल, बीमार घोड़ी और घोड़े को साथ नहीं रहने देते, इन सबको हम 'संस्कार' ही कहेंगे। आश्चर्य तो यह है कि मनुष्य इतना ज्ञानवान होता हुआ भी अपने आपको सृष्टि का सर्वश्रेष्ठ प्राणी नहीं सिद्ध कर पाया। जो कृषक अपने बैलों की वंश परम्परा का ध्यान तो रखता है वह यह सोचने का कष्ट कभी नहीं करता कि किस प्रकार सुन्दर व कुशल कृषक उत्पन्न किये जायें। पण्डित यह सोचने का कष्ट कभी नहीं करता कि उसकी सन्तान किस प्रकार योग्य और प्रतिभाशाली बन सकेगी यह सब इस कारण से कि हमने इन संस्कारों के महत्व को उचित रूप में नहीं समझा है। राजाओं की सन्तान इसलिए अयोग्य होती है कि कोई राजाओं के सम्मुख शिक्षा देने का साहस नहीं कर सकता, वे भोग विलास में इतने डूबे रहते हैं कि उनका ध्यान उनकी बुराइयों की ओर आकर्षित किया जा सके इसीलिए हमारे ऋषियों ने यह उपदेश दिया कि सन्तानोत्पत्ति के पूर्व इस प्रकार के नियमों का पालन किया जाये क्योंकि अयोग्य सन्तान की उत्पत्ति स्वयमेव हो जाती है। उसके लिए कोई प्रयत्न नहीं करना पड़ता। वैदिक संस्कृति की सबसे बड़ी योजना और उस योजना का केन्द्र बिन्दु संस्कारों द्वारा मानव का नव निर्माण था।

वैदिक परम्परा के अनुसार अगर यह मान लिया जाये कि बालक जन्म जन्मान्तरों के और माता-पिता के संस्कारों को लेकर आता है, तो प्रश्न उठ खड़ा होता है कि संस्कार पद्धति द्वारा एक छोटे से जन्म में जो हम संस्कारों की प्रक्रिया करते हैं उनसे जन्म-जन्मान्तरों के संस्कारों को कैसे धो सकते हैं ? हमने पिछले जन्मों

में न जाने कितने कर्म किये, अच्छे किये या बुरे किये उन सबको एक-एक करके भोगे बिना केवल इस जन्म के संस्कारों से कैसे बदला जा सकता है ?

यहाँ संस्कार का प्रश्न 'कर्म का प्रश्न बन जाता है। क्या पिछले जन्म के कर्मजन्य संस्कार को इस जन्म के 'संस्कार' से मिटाया जा सकता है ?' धर्म के चिन्तकों ने 'कर्म' के विषय में भिन्न विचारों को जन्म दिया है, ऐसा कहा जाता है कि मनुष्य की पीठ पर दो फरिश्ते हर समय वही खाता लेकर लिखते रहते हैं। किसी के अनुसार चित्रगुप्त की बही में एक-एक काम, अच्छा हो या बुरा हो दर्ज किया जाता है। हर कर्म का फल मिलता है और जब तक कर्म का फल नहीं मिल जाता वह मिटता नहीं है। इन सबका आधारभूत विचार यह है कि संसार का शासन-कारण कार्य के नियम से हो रहा है, कोई कार्य बिना कारण के नहीं होगा, जिसे हम कार्य कहते हैं, वह अगले जन्म का कारण बन जाता है और इस कारण कार्य कारण की व्यवस्था से कर्मों की श्रृंखला चलती चली जाती है। अगर हमारे जीवन का नियंत्रण जन्म-जन्मान्तरों के कर्मों के संस्कारों से होता है और उनके साथ माता-पिता के संस्कार भी मिल जाते हैं तो जिन्हें भोगना पड़ता है तब एक-एक कर्म का भुगतान करने के लिए इस जन्म के थोड़े से कर्म कैसे पर्याप्त हो सकते हैं ?

कर्म जन्य संस्कारों का भुगतान कैसे होता है :-

कर्म जन्य संस्कार किसी के रजिस्टर में लिखे नहीं जाते न वे चित्रगुप्त के बहीखाते में दर्ज होते हैं। कर्म तो अपनी निशानी लगाते हैं और पीछे एक लकीर छोड़ते जाते हैं। यह निशानी यह रेखा मस्तिष्क पर पड़ती है। मनोवैज्ञानिक पर्सीनन ने नेमे शब्द का प्रयोग किया है। 'नेमे' का अर्थ है - मस्तिष्क में उस पर पड़ी रेखाओं के संचय की शक्ति उदाहरण के लिए जब हम पुस्तक पढ़ रहे हैं तब एक-एक अक्षर को स्मरण नहीं कर रहे होते, फिर भी पिछले अनुभवों और संस्कारों के कारण दनादन पड़ते जाते हैं। बाजार में चलते अपने किसी मित्र को देखते हैं उस समय हमें उसका चेहरा स्मरण हो आया। हम उसे पिछले संचित संस्कारों के कारण ही एकदम पहचान जाते हैं। पहले दिन का याद किया अगले दिन भूल जाता है मगर दोबारा याद करने पर पहले की अपेक्षा शीघ्र याद होता है, ये सब 'स्मृति' के नहीं 'नेमे के दृष्टांत हैं 'स्मृति' संकुचित शब्द हैं, नेमे विस्तृत शब्द है। प्रत्येक अनुभव अपने पीछे मस्तिष्क में एक संस्कार छोड़ जाता है। मस्तिष्क पर पड़ रहे इन संस्कारों के लिए पर्सीनन ने 'एनग्राम' शब्द का प्रयोग किया है। प्राणी के मन की संचय शक्ति है 'नेमे'

और अनुभव से मस्तिष्क के ग्रे-मैटर पर जो संस्कार मानो लिखे जाते हैं वे एन्जाइम हैं संस्कार मस्तिष्क के तत्व को भौतिक रूप में प्रभावित करते हैं। मस्तिष्क पर एक-एक लिखा नहीं रहता, उन कर्मों के कारण मस्तिष्क की 'संचय शक्ति' संस्कारों का रूप धारण करती जाती है मस्तिष्क में एक रुचि एक प्रवृत्ति उसकी एक दिशा उसका अगले काम करने का रास्ता बनता जाता है। जैसे भोजन के फलस्वरूप शरीर बन जाता है, भोजन का एक-एक अंश बैठा न रहकर शरीर के तत्वों में बदल जाता है, वैसे कर्म जो मानसिक भोजन है, उसके फलस्वरूप संस्कार बन जाते हैं, शरीर बन जाने के बाद भोजन से हमें उलझना नहीं पड़ता, इसी प्रकार संस्कार बन जाने के बाद उन भिन्न कर्मों से मस्तिष्क पर अच्छा संस्कार लिखा जाता है। मस्तिष्क पर अच्छे संस्कारों के लिखे जाने से अच्छी रुचि, अच्छी दिशा की ओर मनुष्य चल पड़ता है और बुरे संस्कारों से बुरी रुचि, मनुष्य बुरी दिशा की ओर चल पड़ता है।

आत्मा एक जन्म से दूसरे जन्म में जाता हुआ या इस जन्म में ही अपना जीवन बिताता है और भिन्न-भिन्न कर्मों की गठरी को अपने ऊपर लादे नहीं फिरता, जैसे वृक्ष बीज में समा जाता है, वृक्ष बीज का ही फैलाव है। वैसे अनन्त कर्म-बीज रूप में संस्कार में समा जाते हैं, मस्तिष्क संचय शक्ति के कारण इन सबका मानो घोल बनकर मस्तिष्क का वर्तमान बन जाता है। संस्कारों के बन जाने पर कर्मों का प्रश्न समाप्त हो जाता है उदाहरणार्थ हम एक कटोरी में केसर डालते हैं कुछ दिनों बाद केसर फेंक देते हैं मगर फिर भी उस कटोरी में बास बनी रहती है, कर्मों की यही बात संस्कार कहलाती है।

संस्कार रहते कहाँ हैं ? भौतिकवाद के अनुसार 'बाह्य संवेदनों या हमारे कर्मों की निशानी, उनकी रेखा, उनका आलेखन मस्तिष्क पर पड़ता है। जो लोग पुर्नजन्म को मानते हैं उनके अनुसार प्रश्न हो सकता कि मरने के बाद 'ग्रे मेटर' या मस्तिष्क जो भस्म हो जाता है, फिर वह संस्कारों का निवास कहाँ जाता है जिन्हें हम कहते हैं कि आत्मा उन्हें जन्म-जन्मान्तरों तक लिये फिरता है ?

भारतीय दर्शन ने सूक्ष्म शरीर को स्थूल शरीर के भीतर माना है आत्मा अभौतिक है उसका भौतिक सम्बन्ध स्थूल शरीर से सीधा नहीं होता अभौतिक आत्मा और भौतिक शरीर के बीच में 'सूक्ष्म शरीर' आता है। यह इतना सूक्ष्म है कि अभौतिक के समान है, क्योंकि प्रकृति के सूक्ष्म तत्वों से बना है इसलिए यह भौतिक के समान ही है अभौतिक होने के कारण आत्मा से सीधा सम्बन्ध है ? यही कारण

है कि मस्तिष्क पर जो भौतिक रूप से संस्कार पड़ते हैं, रेखाएं खिंचती हैं। जिनका जोड़ होकर मनुष्य का स्वभाव बन जाता है। हमारे स्वभाव को जन्म-जन्मान्तरों तक अपने साथ लिये फिरता है सूक्ष्म शरीर का स्थूल शरीर के साथ सम्बन्ध नाभि प्रदेश से होता है। तभी जब कोई घटना घटती है उससे पूर्व ही एक दम नाभि स्थल पर घबराहट मालूम होती है। सूक्ष्म शरीर आत्मिक शक्ति को इस्तेमाल करने का साधन है। शरीर की गाड़ी को चलाने के लिए आत्मा सूक्ष्म शरीर को उसी प्रकार कम्पन देता है जिस तरह मोटर को चलाने के लिए पैट्रोल की टंकी को चाबी दी जाती है। मृत्यु स्थूल शरीर की होती है, सूक्ष्म शरीर सदा आत्मा के साथ बना रहता है जब तक उसकी मुक्ति नहीं हो जाती है।

सूक्ष्म शरीर की सत्ता का शास्त्रों में जो वर्णन आता है ठीक उसी प्रकार हम सबके अनुभव में भी आता है, सोते समय स्वप्न में बिना इस स्थूल शरीर की आँखों के हम देखते हैं, सुनते हैं, भागते हैं, यह बिना आँख के देखने वाला, कान के बिना सुनने वाला, बिना पावों के भागने वाला अगर सूक्ष्म शरीर नहीं तो और कौन है? जाग्रत अवस्था में भी कभी-कभी आँखों के खुले रहने पर भी हम नहीं देखते, क्यों नहीं देखते ? जब आँख खुली है, क्योंकि सूक्ष्म शरीर कहीं ओर लगा है, यह तो अनिच्छा पूर्वक शरीर का अन्यत्र जाना है जबकि इच्छा पूर्वक भी हम सूक्ष्म शरीर का स्थूल शरीर से सम्बन्ध तोड़ सकते हैं। शंकराचार्य ने इस सूक्ष्म शरीर से अलग करके अन्यत्र जा सकते हैं। इस बात को सूक्ष्म शरीर से परकाया में प्रवेश करके प्रमाणित कर दिया और योगी ही यह कर सकते हैं। इस सूक्ष्म शरीर को कारण शरीर भी कहा है क्योंकि आगे जो कुछ करना है या बनना है उसका यह संस्कार ही कारण है।

वैदिक संस्कृति के अनुसार जन्म धारण कर लेने के बाद तो संस्कार डालते ही हैं मगर जन्म लेने से पहले माता के गर्भ में भी नये संस्कार डाले जा सकते हैं।

यही संस्कारों की पद्धति का रहस्य है कारण शरीर के संस्कार जो पड़ जायेंगे वे नये हों या पुराने, वे एक तरह के बीज होंगे जो इस जन्म में फूटेंगे। जन्म-जन्मान्तरों के कर्मों का निचोड़ ही तो संस्कार हैं, संस्कार में एक कर्म नहीं अनेक कर्मों का जोड़ मिला रहता है, उस जोड़ के भुगतने में ही सब कर्म भुगत जाते हैं। एक-एक वर्ग में उलझने की आवश्यकता नहीं एक-एक टहनी को पकड़ने की आवश्यकता नहीं रहती।

जो आत्मा नया शरीर धारण करने वाला है वह कुछ पुराने संस्कारों को लेकर आता है। हम आत्मा के स्थूल शरीर धारण करने से पहले उन सूक्ष्म बुरे संस्कारों पर चोट या प्रहार नहीं करते उन्हें बदलने का यत्न नहीं करते तो ये संस्कार जैसे हैं वैसा ही तो मानव जन्म लेगा। वैदिक विचारधारा के अनुसार नवमानव का निर्माण करने के लिए मानव के जन्म लेने से पूर्व, उस समय जब वह माता के गर्भ में है उसके संस्कारों के शरीर में जो इस जन्म का कारण है जिसे सूक्ष्म शरीर के नाम से पुकारा जाता है, नव मानव को जन्म देने वाली स्त्री और पुरुष अपने विचारों को वेग से, बल से उनकी उग्रता से नवीन संस्कार डालने का यत्न करते हैं। इसलिए वैदिक संस्कृति ने जन्म लेने वाले जीव को संस्कारों के घेरे में बन्द कर दिया था। वैदिक संस्कृति के अनुसार गर्भस्थ शिशु को बिल्कुल बदला जा सकता है इसके लिए माता-पिता को अपने संस्कारों को सबल बनाना होता है। माता-पिता के संस्कार भी कर्मों के एक लम्बे-चौड़े चक्र में पड़कर बने होते हैं। कर्मों के संस्कार बने, उनकी रुचि बनी, प्रवृत्ति बनी जीवन की दिशा बनी। संस्कार पद्धति द्वारा माता-पिता अपने संस्कारों को ऐसे सबल और सशक्त बनायें जिससे वे अपनी सन्तति को अपने संस्कारों द्वारा अधिक प्रभावित करें। बच्चा अपने ही माता-पिता से संस्कार ग्रहण करता है और जन्म लेकर जिस सामाजिक पर्यावरण में रहता है उससे भी संस्कार ग्रहण करता है जैसे मकान बनाने के लिए एक रूप रेखा तैयार की जाती है उसी प्रकार एक-एक ईंट एक-एक पत्थर उस रूप रेखा के अनुसार चुना जाता है ऐसे ही जब मानव के निर्माण की रूपरेखा बनेगी, उस रूप रेखा के अनुसार ही जब उसकी रचना होगी, तब यह संसार एक नया संसार होगा। इस योजना के अनुसार जन्म लेने वाले मनुष्य उच्चकोटि के मनुष्य होंगे। अगर संस्कार पद्धति के रहस्य को समझ कर हर माता-पिता प्रण कर लें कि वे सन्तान में ऐसे संस्कारों का आधान करेंगे जिनसे वे उत्कृष्ट कोटि के हों और इन्हीं संस्कारों की दिशा को भावी पीढ़ी के निर्माता ऊर्ध्वगामी दिशा दे तो हर बीसवें साल समाज का धरातल ऊपर-ऊपर चढ़ता जायेगा।

संसार में मनुष्य को बदल देने, आमूलचूल परिवर्तन कर देने का जो प्रयास वैदिक संस्कृति में किया गया था उसमें दो चार नहीं सोलह संस्कार हैं। संस्कार आत्मा के जन्म धारण करने के पहले से शुरू हो जाते हैं कुछ जन्म ग्रहण करने के बाद किये जाते हैं। इस प्रकार संस्कार विधि में ऋषि दयानन्द ने सोलह संस्कारों का सविस्तार उल्लेख किया है। इन संस्कारों से मानव का नव निर्माण कैसे

सम्भव है – यह स्पष्ट करना ही संस्कार विधि जैसे ग्रन्थ की रचना करने का महर्षि का उद्देश्य है।

ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका के "वेद-सुधा" विषय का यह मन्त्र है :-

मन्त्र :- *कः स्विदेकाकीचरति क उ स्विज्जायते पुनः।*

किँ स्विद्धिमस्य भेषजं किं वा महत्।।

इस मन्त्र में चार प्रश्न हैं – पहला प्रश्न है कौन एकाकी अर्थात् अकेला विचरता और अपने प्रकाश से प्रकाश वाला है ? (दूसरा) – कौन दूसरे के प्रकाश से प्रकाशित होता है ? तीसरा – शीत का औषध क्या है ? चौथा – कौन बड़ा क्षेत्र अर्थात् स्थूल पदार्थ रखने का स्थान है ?

प्र०१. :- कः स्विदेकाकीचरति ?

उत्तर :- इस संसार में सूर्य ही एकाकी अर्थात् अकेला विचरता है और अपनी कील पर घूमता है, तथा प्रकाशस्वरूप होकर सब लोकों का प्रकाश करने वाला है।

संसार में अकेला चलने वाला सूर्य है और स्वयं प्रकाशवान है, जो अपनी धुरी पर घूमते हुए अपनी ही परिधि में रहता है। जो सूर्य बन गया उसे किसी की सहायता की आवश्यकता नहीं होती जैसे दयानन्द को गुरु विरजानन्द ने सत्य का ज्ञान देकर वेदों के प्रकाश से प्रकाशित कर दिया। वेदों का प्रकाश दीप लेकर संसार में अकेला निकल पड़ा था जैसे सूर्य के प्रकाश के लिए कोई श्रम या मेहनत नहीं करनी पड़ती क्योंकि सूर्य सहज भाव व समभाव से सबको प्रकाश पहुँचाता है। उसके प्रकाश से प्रकाशित होकर चन्द्रमा पृथ्वी के साथ उसके चारों और चक्कर लगाता है उसी प्रकार जो मनुष्य सूर्य के समान तेजस्वी व शक्तिशाली बन जाता है वह संसार में अकेला विचरते हुए अपनी सीमा को पार नहीं करता और कीली पर लगातार घूमता है। उसे संसार की कोई भी शक्ति हरा नहीं सकती। सारा संसार एक ओर दूसरी ओर अकेला देव दयानन्द जिसे जर्जर शरीर गुरु बिरजानन्द ने अपने दिव्य प्रकाश से ऐसा ज्ञान का अद्वितीय सूर्य बना दिया जो अपने प्रकाश से संसार के आकर्षण का कारण बना। डेढ़ पसली वाले महात्मा गाँधी ने सत्य और अहिंसा की कीली पर घूमकर चक्रवर्ती राज्य करने वाली अंग्रेज सरकार को भारत छोड़ने पर मजबूर कर

दिया। सुभाषचन्द्र को उसके देशवासियों ने नहीं समझा वह देश दीवाना सूर्य बन देश से निकल विदेश पहुँचा 'आजाद हिन्द फौज' बनायी जिसने द्वितीय विश्वयुद्ध में शत्रु को दहला दिया। सूर्य का तेज पदार्थों में पहुँचकर रसयुक्त करता है। वाष्पीकरण द्वारा जल में औषधियों को संयुक्त कर वर्षा के रूप में धरती पर बरस कर उसमें से नाना पदार्थ उत्पन्न कराता है उसी प्रकार सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष अपनी वाणी व कार्यों से संसार के प्राणियों में प्राणशक्ति देकर उन्हें सूर्य के समान चमका देता है। देशवासी चन्द्रमा तारों व पृथ्वी के समान उसके चारों ओर चक्कर लगाते हैं। सूर्य जब चमकता है तो चन्द्रमा और सितारों का प्रकाश भी मद्धिम पड़ सभी कान्तिहीन लगते हैं उसी प्रकार देव दयानन्द अगर सूर्य थे तो श्रद्धानन्द लेखराम, हंसराज आदि चन्द्रमा ज़ो उसके प्रकाश से प्रकाशित थे। उनमें धर्म समाज व राष्ट्र के प्रति प्रेम की ऐसी ज्वाला धधका दी जो उनके प्राणोत्सर्ग के बाद भी शान्त न हुई अपनी लौ से उन्होंने करोड़ों लोगों को अपने मिशन का मतवाला बना दिया। जैसे प्रकाश के लिए अपनी दृष्टि अनायास ऊपर उठ जाती हैं और सूर्य के छिपते ही प्राणी व्याकुल हो जाता है उसी प्रकार जो सूर्य बनकर चमके उनके छिपते ही उनका स्थान चन्द्रमा ने ले लिया और रात्रि को अपने प्रकाश से चमका दिया। सूर्य का वह सूर्य जो परमात्मा है वह सूर्य को भी प्रकाश देता है। उसने वेद के माध्यम से सन्देश दिया है कि सूर्य को अपना आराध्य देव बनाकर अपना लक्ष्य निर्धारण कर मोक्ष पद जो अन्तिम परिणिति है, उसे प्राप्त करो, जिस प्रकार वाष्पीकरण शक्ति से पृथ्वी के जल को वाष्प में परिवर्तित कर किरणों के माध्यम से औषध युक्त बादल बनाकर जल के रूप में धरती पर वर्षा करता है, धरती की प्यास मिटती है। उपजाऊ शक्ति बढ़ती है वह शक्ति फल, मेवे, अनाज व नाना खनिज पदार्थों के रूप में मानव को प्राप्त होती है, उसी प्रकार अपनी मान-मर्यादा की परिधि में रहने वाले हर प्राणी व जीव को सम्मान प्राप्त होता है और संसार उनके आगे झुकता है जो सूर्य के समान अपनी कीली पर घूम कर आकर्षण द्वारा अपने चारों ओर दूसरों को घूमने पर विवश कर दे, उसी के आगे संसार नमस्कार करता है। दयानन्द वेदों का सूर्य बनकर भारत में चमका, अपने सम्मुख चन्द्रमा और तारों का महत्त्व कम नहीं हुआ। उसने ऐसे चन्द्रमा बना दिये जो ऋषि के एक इंगित पर सर कटाने को तैयार हो गये। सूर्य बनकर अभिमान की मूर्ति नहीं बनते अपितु त्याग की मूर्ति बन जाते हैं। अपने मिशन व ध्येय से जुड़े मानवों के दुःख व सुख में सम्मिलित होते हैं। अगर सूर्य अपनी कीली पर घूमना छोड़ देता है तो जहाँ अन्धकार है वहाँ अन्धकार ही रहता है। प्रभु की सृष्टि अज्ञानरूपी अन्धकार से ढकी रहती मगर सूर्य तो वही है जो प्रकाशवान होकर अपने ज्ञानरूपी प्रकाश से

दूसरों को प्रकाशित करे अगर विरजानन्द अपने ज्ञान का प्रकाश देकर देव दयानन्द को वेदों के ज्ञान से सुशोभित न करते तो हमारे देश, समाज व जाति की क्या दशा होती इसकी कल्पना मात्र से भयभीत हो उठते हैं। गुरु विरजानन्द के आदेश को लेकर दयानन्द संसार में निकले उस समय एक ओर सारा विरोधी संसार दूसरी ओर वह अकेला, मन में 'शंका', कैसे करूँगा संसार का परिवर्तन, उसी समय सूर्य की प्रथम किरण फूटते ही संसार का अन्धेरा दूर हो गया और प्रकाश छा गया। यही दृश्य उनके लिए एक सन्देश बन गया फिर वह अकेले न रहे क्योंकि उनके साथ था विश्वास का सूर्य और गुरु का आशीर्वाद जिसने सफलता के चरण चूमने का मार्ग प्रशस्त किया। परमात्मा के नियम अटल हैं सूर्य के समान जो उनके नियमों का उल्लंघन नहीं करता वह सूर्य के समान देवता बन जाता है।

प्र०२.:- कः उ स्विज्जायते पुनः ?

(कौन दूसरे के प्रकाश से प्रकाशित होता है ?)

उत्तर :- सूर्य के प्रकाश से चन्द्रमा प्रकाशित होता है।

जब सूर्य अस्त हो जाता है और उसका प्रकाश लुप्त हो जाता है, अर्थात् रात्रि में सूर्य का प्रकाश नहीं होता तो चन्द्रमा अपने प्रकाश से संसार को प्रकाशित करता है। चन्द्रमा अपनी उज्ज्वल चाँदनी की शीतलता से संसार को आकर्षित करता है। फलों में रस देता है। जिस प्रकार चन्द्रमा घटता-बढ़ता रहता है और उसकी कलायें संसार को अचम्भे में डालती है। अमावस्या की काली रात्रि में चन्द्रमा दिखाई नहीं देता मगर उसका अस्तित्व समाप्त नहीं होता, दूसरे दिन धूमिल सी रेखा दिखाई देती है और फिर धीरे-धीरे बढ़ने लगता है तब पूर्ण बना चन्द्रमा अपनी कान्ति से संसार को सुन्दर बना देता है। लोग पूर्णिमा के दिन विशेष रूप से ताजमहल को देखने जाते हैं क्योंकि दूध के समान सफेद संगमरमर से निर्मित ताजमहल चन्द्रमा की दूधिया चाँदनी में अधिक चमकने लगता है, उसी प्रकार जो मानव संसार में दूसरों से सहारा या प्रेरणा पाकर जीवन में उभरते हैं वे अपनी प्रेरणा व प्रकाश से उनके कार्यों को आगे बढ़ाते व पूर्ण लक्ष्य तक पहुँचाते है। चन्द्रमा पृथ्वी के चक्कर काटता हुआ अपने पिता सूर्य से प्रकाश प्राप्त करता है, उसी प्रकार जिसने भी अपने परमपिता की परिक्रमा की अर्थात् उनके आदेशों और नियमों का पालन किया और सीमा में रहकर संसार का हित किया उनकी लोग प्रतीक्षा करते हैं कि कब वे उन्हें चन्द्रमा बनकर प्रकाश देंगे। अन्धेरा किसे भाता है लेकिन प्रकाश बनने के लिए

तिल-तिल अपना अस्तित्व समाप्त करना पड़ता है जैसे दीपक की बत्ती तेल से मिलकर तिल-तिल जलती है तब कहीं दीपक घर के अन्धकार को दूर करता है। श्रद्धानन्द, हंसराज, लेखराम, वीर भगत सिंह, बन्दा वैरागी जैसे राष्ट्र व धर्म के प्रेमी जनों को जब ऋषि का सन्देश मिला तो प्राणों की बत्ती तिल-तिल जलाकर अपने प्यारे ऋषि की आन की व धर्म की रक्षा की। यहाँ देव दयानन्द सूर्य बनकर चमका वहाँ ये महापुरुष व देशभक्त चन्द्रमा बने। हंसराज ने हँस-हँसकर देश व धर्म की खातिर अपने प्राणों की आहुति दे दी। लेखराम ने पेट में छुरा खाया मगर अपने कर्त्तव्य पथ 'शुद्धि आन्दोलन' को नहीं त्यागा। श्रद्धानन्द ने भारतीय सभ्यता और संस्कृति के साकार प्रकाश स्तम्भ गुरुकुल कांगड़ी का निर्माण किया ताकि देश के युवक अपनी संस्कृति से जुड़कर विश्व में मानव निर्माण का कार्य कर सके, धर्म के उन्मादी रशीद अहमद की गोलियों का शिकार बने मगर अपने पथ प्रदर्शक दयानन्द के आदर्शों व नियमों का उल्लंघन नहीं किया। जिस प्रकार चन्द्रमा कभी अपने पथ से हटता नहीं लगातार अपने प्रकाशदाता सूर्य का पृथ्वी के साथ चक्कर काटता हुआ रात्रि में संसार को प्रकाशित करता है उसी प्रकार अगर हमारा जीवन चन्द्रमा के समान बन जाये तो संसार के सभी प्राणी हमारी शोभा को देखेंगे। जिस प्रकार पपीहा केवल स्वाति बूँद की ही चाह रखता है। स्वाति के अतिरिक्त जल का पान नहीं करता उसी प्रकार जिन्होंने चन्द्रमा बनकर सूर्य अर्थात् (ओ३म्) परमेश्वर से प्रकाश प्राप्त किया है वे किसी और प्रकाश की कामना नहीं करते। देव दयानन्द को, गुरु विरजानन्द द्वारा प्राप्त प्रकाश और पाखण्ड खण्डिनी पताका को धर्म के ठेकेदारों ने प्रलोभन देकर रोकना चाहे मगर उन्होंने अपने प्रकाशदाता से विश्वासघात नहीं किया। १७ बार विष का पान किया ईंटें व पत्थर खाये मगर अपने लक्ष्य से नहीं हटे इसी कारण दयानन्द रूपी सूर्य के अस्त होने पर आज भी प्रतीक्षा है कि कल कौन दयानन्द बनकर आये जो हमारी जीवन नौका को उचित दिशा दे। चन्द्रमा पूर्णमासी के दिन समुद्र के जल को अपने आकर्षण से ज्वार भाटे के रूप में उछालकर दूर तक जाने और फिर लौटकर आने को विवश कर देता है। ज्वार भाटे से समुद्र में छिपे अमूल्य रत्न बाहर आ जाते हैं। इसी प्रकार चन्द्रमा के समान जीवन जीने वालों का आकर्षण संसार में छिपे हीरे व रत्नों जैसा गुण व स्वभाव रखने वाले मानवों को संसार के सम्मुख ला देता है। जब एक अकेला व्यक्ति हिम्मत कर अपने बाहुबल के भरोसे अत्याचार का मुकाबला करने निकल पड़ता है तो उसके कदम से कदम मिलाने लाखों व्यक्ति भी साथ चल पड़ते हैं। आज भी सूर्य रूपी ऋषि दयानन्द के आर्य जन ज्ञान रूपी प्रकाश से अन्धकार अज्ञान को मिटाने नगर और गाँव-गाँव जाकर उनके विचारों को पहुँचा रहे

हैं इसलिए वेद में कहा है कि चन्द्रमा सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित होता है उसमें स्वयं का प्रकाश नहीं उसी प्रकार आज जन मानस के हृदय में चन्द्रमा के सम सुशोभित वे शूरवीर योद्धा और देशधर्म व जाति के रक्षक हमारे सन्तजन भी अपनी प्रेरणा से हमें आनन्द का आलोक देकर हमारी शोभा बढ़ा रहे हैं।

प्र०३.:- बीजरोपणार्थ महत्क्षेत्त्रमिव किमत्र भवतीति ?

कौन बड़ा क्षेत्र अर्थात् स्थूल पदार्थ रखने का स्थान है ?

उत्तर :- पृथ्वी साकार चीजों के रखने का स्थान तथा सब बीज बोने का सबसे बड़ा खेत है। पृथ्वी ही एक ऐसा आधार है यहाँ सभी स्थूल पदार्थ रखे जा सकते हैं। छोटे से छोटा बड़े से बड़ा सभी पदार्थ पृथ्वी पर टिके हैं। जैसे एक बड़ा भवन इमारत की सुदृढ़ नींव पर ही टिका रह सकता है उसी प्रकार पृथ्वी पर सभी टिके हैं। जो वस्तु ऊपर फेंकी जाती है वह भी लौटकर पृथ्वी पर ही आती है। प्रत्येक वस्तु व कलाकृति का बनाने वाला भले ही भिन्न हो परन्तु उस वस्तु का धरातल ही सहारा है। हम भी कल्पनाओं की उड़ान आकाश में इतनी ऊँचाई पर न करे कि जब धरातल पर गिरे तो उठना भी असम्भव हो जाये। नदी नाले पशु पक्षी जानवर कीट पतंगे सभी प्राणी जड़ व चेतन सभी का आधार पृथ्वी ही है। मानव के जीवन के लिए आवश्यक भोजन, वस्त्र, मकान की आवश्यकता की पूर्ति भी धरती से सम्भव है। सबको चलना और विचरना भी धरती पर ही पड़ता है पक्षी आकाश में कितनी ऊँचाई तक क्यों न उड़ ले, अन्त में पृथ्वी पर टिके वृक्ष पर बने अपने घोंसले में ही विश्राम करने आयेगा। सूर्य की किरणों से वाष्प बने बादल जल बनकर पुनः पृथ्वी पर ही बरसेंगे।

सभी प्रकार के खनिज पदार्थों की उत्पत्ति का स्थान भी पृथ्वी ही है। पृथ्वी ही एक ऐसा विशाल क्षेत्र है यहाँ सभी पदार्थ रखे जा सकते हैं, शून्य या अधर में रखना सम्भव नहीं है। जल जो मानव जीवन का अमूल्य प्राणाधार है वह भीं धरती से निकलता है, अमूल्य खाद्य पदार्थ भी धरती का सीना फोड़कर बाहर निकलते हैं। धरती पर बोया गया बीज अंकुरित होकर अन्न के रूप में हमें जीवन देता है। कोई भी ऐसा अन्न, फल व सब्जी नहीं जो आकाश में पनपी हो सभी का बीज धरती की अन्धेरी कोख में दफनाने पर ही अनुकूल परिस्थितियाँ मिलते ही बाहर खुले वातावरण में आकर साकार बना है। धरती पर रखे पदार्थ तक ही मानव की पहुँच है। पदार्थ का वनस्पति के रूप में बढ़ना भी धरती पर होता है। पृथ्वी का हृदय विशाल है,

इसलिए तो मानव से कहा जाता है कि अपना मन आकाश सा विशाल और पृथ्वी के समान धैर्य का गुण धारण करने वाला बनाओ। धरती के समान देने और त्याग भावना को अपना कर बदले में कुछ पाने की कामना मत करो। पृथ्वी ही ऐसा क्षेत्र है जहाँ से आकाश की ओर उड़ान ली जाती है।

प्र०४. हिमस्य शीतस्य भेषज औषधं किमस्ति ?

शीत का औषध क्या है ?

उत्तर :- शीत का औषध अग्नि है। साधारण शीत को अग्नि से शान्त किया जाता है। शीत में ठिठुरते मानव को सूर्य की गर्मी आराम पहुँचाती है। हमारे मन में उठने वाले भय, संशय और सन्देह रूपी कीटाणुओं को ज्ञान रूपी अग्नि ही शान्त करती है। जिस देश की सेना का आत्मबल शीत पड़ जाता है उस देश की स्वतंत्रता संकट में पड़ जाती है और देश को नौजवानों के ठण्डे पड़े हथियारों को उठाने की शक्ति हमारे कवियों की ओजस्वी वाणी अग्नि रूपी आत्मा का काम करती है तब अपने प्राणों की परवाह किये बिना योद्धा युद्ध की अग्नि में कूद पड़ते हैं। मध्य युग में अपने स्वरूप को भुला देने वाली नारी की भावनाएँ शीत पड़ गयी थी उनका अपना कोई महत्व नहीं था, मगर हमारे सुधारकों ने उनके सुप्त हृदय में अपने अधिकारों और कर्तव्यों का बोध कराया जिससे पुरुष पर आश्रित नारी ने स्वावलम्बी बनकर अपनी शीत पड़ी भावनाओं को चिंगारी का रूप दिया जिसमें समाज की सभी बुराइयों और नारी के प्रति अत्याचार की प्रतिक्रिया को ऐसा रूप दिया कि पुरुष वर्ग उसके स्वरूप के आगे झुक गया। महर्षि दयानन्द ने व राजा राममोहन राय आदि समाज सुधारकों ने नारी जाति के सम्मान व अस्तित्व की रक्षा हेतु आन्दोलन चलाया। जिस जाति वं देश में अपनी सुरक्षा की भावना का प्रकाश नहीं वह सदा गुलाम बनी रही। इसलिए कहा गया है कि शीत अर्थात् अपनी शक्ति को भूलकर अत्याचारों का मुकाबला न कर सकने की शक्ति का ह्रास ही हमारा सबसे बड़ा शत्रु है। जिसने अत्याचारों का दृढ़ता से विरोध किया वही इस शीत का ताप (ओषध) बन सका। रानी चेनम्मा, महारानी लक्ष्मीबाई, दुर्गावती और करणवती ने अग्नि की ज्वाला बनकर अंग्रेजों व मुगलों को 'नाको चने चबा दिये।'

इन चारों प्रश्नों के उत्तर को व्यवहारिक पक्ष में अपनाने के लिए प्रयास किया गया है। जिन्होंने ऐसा प्रयास किया वे संसार में मान-सम्मान पाने के अधिकारी बने या देश जाति व धर्म पर बलिदान होकर अमर हो गये।

पूजा में नारियल का विशेष स्थान क्यों ? (एक अलंकार रूप में)

पौराणिक पद्धति के अनुसार ईश्वर की पूजा अर्चना में नारियल का विशेष स्थान है। धार्मिक कार्यों में जल से परिपूरित कुम्भ पर नारियल को रखा जाता है। धार्मिक कार्यों व सामाजिक आयोजनों में आशीर्वाद के रूप में भी नारियल का प्रचलन है। हमारे विद्वानों ने यह विचार किया है कि जिस प्रकार सभी प्राणियों में श्रेष्ठ प्राणी मानव माना जाता है। उसी प्रकार नारियल भी अपने श्रेष्ठ गुणों के कारण पूजा में श्रेष्ठ व शुभ माना जाता है।

अलंकार रूप में नारियल की तुलना ब्रह्माण्ड के लघु रूप मानव देह से की गयी है। जिस प्रकार मानव शरीर के तीन अंग स्थूल, सूक्ष्म शरीर व कारण शरीर तथा पाँच कोष। अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय तथा आनन्दमय कोष है उसी प्रकार नारियल के भी पांच कोष हैं।

१. नारियल के सबसे ऊपर का आवरण जो एक पतली झिल्ली के समान है वह मानव शरीर में पहला कोष अन्नमयकोष है जो स्थूल शरीर है और प्राणमय कोष (नारियल की जटा भाग) की रक्षा करता है नारियल का ऊपर का पतला आवरण अन्नमय कोष कहलाता है और शेष चारों कोषों की रक्षा करता है।

प्राणमय कोष - स्थूल शरीर के अतिरिक्त इसका आश्रयभूत सूक्ष्म शरीर है और ऊपरी आवरण की आत्मा है, यह शेष कोषों की चिमनी के समान रक्षा करता है।

जिस प्रकार अन्नमय और प्राणमय कोष दोनों मिलकर स्थूल शरीर का संचालन करते हैं, स्थूल शरीर के मूलभूत ये दोनों कोष हैं, उसी प्रकार नारियल का तीसरा आवरण जो कठोर काष्ठ के समान है यह दूसरे आवरण की आत्मा है अर्थात् उसे शक्ति पहुँचाता है यह मानव शरीर में मनोमय कोष है।

विज्ञानमय कोष - जिस प्रकार प्राणों के साधने पर और शरीर की साधना के उपरान्त बुद्धितत्व अर्थात् ज्ञान प्राप्त होता है, उसी प्रकार नारियल का चौथा भाग (आवरण) व सार तत्व गिरि (गोला) जो फल के रूप में भोग्य पदार्थ है वह विज्ञानमय कोष है यह पांचवें तत्व जल के ऊपर चिमनी के समान उसे सुरक्षित रखता है। इस कोष से ही तीसरा कोष (मनोमय कोष) परिपूरित है। जिस प्रकार विज्ञानमय कोष

अर्थात् बुद्धितत्व को सर्वश्रेष्ठ माना जाता है उसी प्रकार इस अमृतमय फल को भी श्रेष्ठ व उपयोगी माना जाता है यह क्षुधा को भी शान्त करता है। तीन आवरणों के नीचे यह सुरक्षा व जीवन प्राप्त करता है। उसी प्रकार बुद्धितत्व अथवा विज्ञानमय कोष की प्राप्ति भी अन्नमय, प्राणमय और मनोमय कोष की उपलब्धि के उपरान्त ही प्राप्त होती है।

आनन्दमय कोष :- नारियल में पाँचवां भाग जो सबसे भीतर चार आवरणों से ढका है, वह जल तत्व है, जो प्राणों को तृप्त करता, प्यास को बुझाता है और विशेष शक्ति देता है। जिस प्रकार आनन्दमय कोष में ज्ञान की क्रिया के दर्शन से समाहित चित्त में (शक्ति) एक भरपूर मधुर-सा रस बहाने वाली भाव लहरियां उठ-उठ कर जो हर्षयुक्त भाव उत्पन्न करती हैं, वह आनन्द आत्मदर्शन के अनन्तर आत्मा का विषय है। साधक जब जीवन मुक्त अवस्था में प्रवेश कर लेता है, तभी आनन्द की अनुभूति विशेष रूप से होती है। उसी प्रकार नारियल के चारों आवरणों को भेदकर पाचवाँ तत्व जो आनन्द का प्रतीक है उसे प्राप्त कर सकते हैं। परमात्मा ने नारियल के समान सर्वश्रेष्ठ व उपयोगी भोग्य पदार्थ जो सभी मांगलिक कार्यों में मंगल का चिन्ह माना जाता है उसमें मानव के समान पंच कोषों की स्थापना की, एक के ऊपर एक दूसरा आवरण चिमनी के समान लगाया है। इसके तीसरे आवरण यानि सूक्ष्म शरीर पर मानव के समान दो आंखों का निर्माण किया। पहले दो आवरण स्थूल शरीर है तीसरा व चौथा आवरण जो फल है। वह सूक्ष्म शरीर है। जल तत्व कारण शरीर है। विचार करने से यह अनुभव होता है कि मानव शरीर के समान ही नारियल की श्रेष्ठता है। जिस प्रकार आनन्दमय कोष से आध्यात्मिक आनन्द मिलता है उसी प्रकार नारियल के जल से विशेष ऊर्जा और आत्मतृप्ति होती है।

अन्नमय कोष दिखाई देता है, प्राणमय कोष का पल-पल अनुभव होता है इनके अतिरिक्त भीतर के तीन कोष दिखाई नहीं देते। सबके अनुभव के विषय भी वे नहीं बन पाते जो साधक इन कोषों को शुद्ध व पवित्र कर लेता है वहीं एक-एक कोष को भेदता हुआ उस दैवी द्वार पर पहुँच जाता है यहाँ से इस कोषों के स्वामी आत्मतत्व की अनोखी झलक देखता है उसी प्रकार व्यक्ति अपने पुरुषार्थ से नारियल का एक-एक आवरण हटाता हुआ और भीतर के तत्वों को देखता हुआ अन्त में जल रूपी आत्मतत्व प्राप्त करता है और आत्मिक ऊर्जा प्राप्त करता है। ब्रह्माण्ड के इस लघु रूप मानव के समान नारियल की गुणवत्ता और उपयोगिता है। आयुर्वेद की दृष्टि से भी नारियल का शारीरिक स्वास्थ्य में विशेष महत्व है इसका जल ऊर्जा देता है वही

शीतलता भी देता है नारियल के साथ मिश्री मिलाकर सेवन करने से पित्त शान्त होता है, नारियल से निर्मित तेल भोजन बनाने में बालों में लगाने में भी गुणकारी है। इसके सेवन से शरीर स्वस्थ रहता है जब शरीर स्वस्थ होगा तो मन भी स्वस्थ होगा और मन के स्वस्थ रहने के कारण आत्मिक शक्ति बढ़ेगी और मानव अपने विशेष उद्देश्य को पूरा कर अपना लक्ष्य प्राप्त करने में सफल होगा। इस श्रीफल की अपनी एक विशेष शोभा है परमात्मा की इस उपयोगी रचना का हम सदुपयोग करें।

आर्यों आर्यत्व की ओर बढ़ो।

जुलाई मास के टंकारा समाचार में खुशहाल चन्द्र आर्य के लेख आर्यसमाज भी पौराणिकों की राह पर तथा डॉ० मुकुन्द लाल शर्मा जी के लेख 'दुःखी दिल की पुरदर्द दास्ता' को पढ़ा यह विचार या दर्द केवल इन्हीं विद्वानों या ऋषि प्रेमियों का नहीं अपितु उस प्रत्येक आर्य का है जो वास्तव में विचार और कर्म से आर्यसमाज और ऋषि के आदर्शों से जुड़े हैं। डॉ० मुकुन्द लाल जी ने आर्य समाज के आरम्भिक दौर का और वर्तमान समय की स्थिति का जो चित्र प्रस्तुत किया है यह बड़ी चिन्ता का विषय है, यह परिस्थिति उस क्रान्तिकारी संस्था की है, जिसके पथ प्रदर्शक देव दयानन्द ने नं केवल वेदों में आस्था जाग्रत की अपितु मानवीय गुणों और आदर्शों को स्थापित कर एक सुन्दर व आदर्श समाज का निर्माण किया, जो मानव समाज हित प्रस्थापित मूल्यों की रक्षा कर सके, इसके नियमों को मानने वालों ने अपने बलिदान व शौर्य से उसे गौरव प्रदान किया आज वही संस्था जिसका लोहा सभी धर्म गुरुओं ने स्वीकारा और इस वृक्ष की मजबूत जड़ें विदेशों में फैली और फैल रही हैं, आज वही संस्था अपने लक्ष्य और उद्देश्य से भटक कर केवल सन्ध्या और यज्ञ कर अपने कर्तव्यों की पूर्ति करने वाली बन चुकी है। जब कभी ऐसा सुनने में आता है कि इन भवनों में १० वर्षों बाद कोई सन्ध्या और यज्ञ करने वाला दिखायी नहीं देगा तो ये शब्द हृदय में शूल की भाँति चुभते हैं। वास्तविकता यह है जिस उद्देश्य से आर्यसमाज की स्थापना की थी, आज वह आदर्श संस्था अपने उद्देश्य से भटक रही है। आर्य समाज के भवन आज ऐसे पदाधिकारियों के अधीन है जो पौराणिकता से जुड़े हैं, उनके जीवन व व्यवहार में आर्यत्व का कोई गुण नहीं उन्होंने इन भवनों को आय का साधन बना रखा है।

मैं स्वयं बचपन से आर्य समाज से जुड़ी हूँ मेरे पिता महाशय गोपीचन्द जी जो एक गांव (जो इस समय पाकिस्तान में है) में रहते थे। उन दिनों आर्यसमाज

बुलन्दियों पर था। ऋषि दयानन्द के अमर ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश ने उनकी जीवन ध
ारा को बदल दिया। उन्होंने पारिवारिक रूढ़ियों और परम्पराओं को तोड़ कन्या शिक्षा का व्रत लिया।

जीवन पर्यन्त स्वयं उन नियमों का पालन किया और परिवार से करवाया उन्हीं के संस्कारों से ओत-प्रोत होकर मैंने दिल्ली प्रवास के समय और वर्तमान में बरेली में अपनी क्षमतानुसार वैदिक धर्म के प्रचार व प्रसार हेतु प्रयास किया और कर रही हूँ। विभिन्न पदों पर रहते हुए अपने सहयोगी पदाधिकारियों की गलत नीतियों और कार्यशैली का निर्भय होकर विरोध किया। उत्सवों में प्रबुद्ध विद्वानों के प्रभुत्व और (श्रोताओं) के अपार समूह को मैंने देखा, वह उत्साह, लगन व उमंग जो पहले थी उसकी झलक तक दिखायी नहीं देती कुछ विशेष स्थानों को छोड़कर। वह बलिदानी वीर जिन्हें किसी अबला के आँसू, अबोध बालक का दुख द्रवित करता था आज न जाने वह कोमल हृदय मानव पत्थर से कठोर कैसे हो गये ? आज अस्मत लुटती अबलाओं की चीत्कार अबोध बालकों के पैरों में पड़ी गुलामी की जंजीरें चारों ओर धधकती ईर्ष्या व द्वेष की ज्वाला उनके चैन को क्यों नहीं छीन रही ? सीने में गोली, पेट में छुरा खाने वाले वे मतवाले कर्मवीर तथा श्रद्धा और त्याग की साक्षात प्रतिमा आर्यजन कहाँ गये, क्या उन्हें काल निगल गया या समय की धूल ने उन्हें ढक लिया। आज स्वार्थपरता तथा दूषित विचारों के प्रभाव से प्रभावित हम लोग उन लोगों के हाथ की कठपुतली बन रहे हैं, जिन्होंने आर्यसमाज जैसी गौरवशाली संस्था को अपने स्वार्थपूर्ति हेतु अपनी इच्छानुसार चलाकर इसके गौरव व सम्मान को कुचला है। आज हम अपने आदर्शों और गौरवशाली संस्था के गौरव को अक्षुण्ण रखने वाली विचारध
ारा से बहुत दूर चले आये हैं। समाज में हो रहे अनाचार माताओं के सम्मान की अवहेलना और निठारी जैसे वीभत्स नर संहार का दृश्य भी हमें झकझोरता नहीं, हम आँख व कान मूंदे अन्धराह पर चल रहे हैं। जिसकी कल्पना ऋषिवर ने नहीं की थी, आज आत्मा की आवाज को कुचला जा रहा है। वेद का पाठ करने वाला और चरित्र का पाठ पढ़ाने वाला स्वयं चारित्रिक पतन से कितना गिर रहा है इसके अवलोकन का समय उसके पास नहीं है और आज स्वाध्याय की परिभाषा ही बदल रही है।

आज का आर्य जो श्रेष्ठ कोटि में सम्मानित होता था न्यायालय में जिसकी गवाही वेद का प्रमाण मानी जाती थी क्योंकि उस समय यह धारणा सर्वमान्य थी कि आर्यसमाजी कभी झूठ व अन्याय का पक्ष नहीं लेता, आज वही साम, दाम, दण्ड, भेद की नीति को अपना अस्त्र बनाकर अपने समर्थक जुटाने में लगा है। जो उसके पद

को अपने वोटों द्वारा सुरक्षित रख सके। ऋषि दयानन्द का जयघोष करने वाले ही अपने प्यारे पथप्रदर्शक के आदर्शों और बलिदानों की धज्जियाँ उड़ा रहे हैं, कैसा होगा वह व्यक्तित्व जो ऋषि का स्वप्न पूरा करेगा, कैसे होगी दूर पीड़ित हृदय की पीड़ा, कैसे नारी माँ बहिन और पत्नी, देवी का सम्मान प्राप्त करेगी। दुर्गा व काली के उपासक इस साक्षात दुर्गा और काली के दर्शन को कब लालायित होंगे, यह तभी सम्भव है जब आर्य आर्यत्व को पहचानेंगे।

अगर हम समाज से इस विषमता को मिटाना चाहते हैं तो सामाजिक समरसता के सहारे वेदों के ज्ञाता आर्य जन बिना किसी के सहारे अपने कदम स्वयं आगे बढ़ायें। हम कदम बढ़ा कर तो देखें, अगर हमारा उद्देश्य उत्तम और राष्ट्र हित में साधक हैं तो विश्वास करें हमारे सशक्त कदमों के साथ कदम मिलाकर चलने वालों की कमी न होगी, एक बार प्रयास तो करें भ्रम के मायाज़ाल से बाहर निकल कर अपनी शक्ति को तो पहचाने अगर हमारा ऋषि अकेला एक नये युग का निर्माण कर सकता है तो फिर हम क्यों नहीं समाज की दिशा बदल सकते। ऋषि का उद्देश्य पवित्र था, बलिदान की भावना थी तभी तो लाखों आर्यों में जो दीवानापन था उसी का परिणाम शुद्धि आन्दोलन था जिस युग में श्रद्धानन्द और लेखराम, हंसराज जैसे अनेक महापुरुषों ने अपने जीवन की आहुति दी। अन्धविश्वास, जातपात, ऊँचनीच के भेड़ियों के खूनी पंजों में जकड़ी भोली जनता को मुक्त कराया, आज आर्यसमाज की शिथिलता के कारण ये बुराइयाँ पुनः पनप रही है और पढ़ा लिखा और सभ्य वर्ग इसका शिकार अधिक है इनमें गहराई तक जाने का प्रयास किसी ने नहीं किया। आर्यसमाज के साधारण जन ही नहीं बल्कि आर्य जाति के उच्च कोटि के विद्वान लोकाचार के नाम पर पुरानी रूढ़ियों और परम्पराओं को प्रश्रय दे रहे हैं जिस दलदल से हमें ऋषि ने निकाला था उसी में पुनः घुसते जा रहे हैं। आर्यो ! अगर ऋषि के युग को पुनः लाना चाहते हैं तो स्वयं को पहचानो तुम कौन थे ? और क्या हो गये हो? व्यर्थ के विवादों और धन लिप्सा के जाल से उभर कर तो देखो, कैसे अलौकिक आनन्द की प्राप्ति होगी। गर्व से और प्यारे ऋषि के प्यारे भक्त उनके वचनों को गले का हार बनाकर तो देखें देश ही नहीं विश्व को स्वर्ग बना देंगे। आर्यसमाज का वह आरम्भिक दौर, जिसे डॉ० मुकुन्द लाल शर्मा जी तथा कई लोगों ने देखा था वह पुनः लौट आये, पुरुषार्थ करने पर सफलता अवश्य मिलेगी। विरोधियों की इच्छा को पूर्ण न होने दें, उनकी शतरंज का मोहरा न बनें। आओ आर्यत्व को पहचान कर डॉ० खुशहाल चन्द समाज की जिस नीति और छवि को देखना चाहते हैं वह दिखा दें। हमारा प्रत्येक कृत व व्यवहार आर्यत्व की पहचान है।

मानवता की सुनो पुकार

त्याग तपस्या की प्रतिमा तुम
श्रद्धा के हो तुम अवतार
देश की आँखें लगी है तुम पर
मानवता की सुनो पुकार

भारत माँ के वीर सपूतों
अबलाएँ करती चीत्कार
दयानन्द ऋषि के स्वप्नों को
करना है तुम को साकार

देश जाति की रक्षा करना
आर्यों है जीवन का सार
खोद रही है खाई जन में
मतभेदों की है भरमार

कर्तव्यों से विमुख न होना
मानवता के खोलो द्वार
दूर करो जगती का क्रन्दन
विश्व करेगा जय जयकार

—श्रीमती कृष्णा बजाज

मन का भौतिकवादी दृष्टिकोण

मन तथा शरीर दोनों आपस में इस तरह जुड़े हैं जिससे यह निश्चित कर पाना कठिन है कि अन्तिम सत्ता मन की है या शरीर की, भौतिकवादी मन को नहीं मानते। मन शरीर की किन्हीं परिस्थितियों का परिणाम है। शराब से, एक के स्थान पर दो एल० एस० डी० लेने के बाद वह आसमान में उड़ने लगता है, जिगर खराब होने से जीवन में वह निराशा व अन्धकार से घिर जाते हैं।

मनोवैज्ञानिक के अनुसार मन का शरीर पर प्रभाव पड़ता है, लाटरी की सूचना से हार्ट फेल, भय से मस्तिष्क विकृत, क्रोध से चेहरा लाल हो जाता है। मन की सत्ता अगर अलग न होती तो मानसिक विचार का शरीर पर प्रभाव क्यों पड़ता है ?

हमारे भीतर दो सत्ताएँ हैं (१) मन (२) शरीर

मन :- मन अभौतिक है छुआ नहीं जा सकता, दिखाई नहीं देता स्पर्श नहीं किया जा सकता, स्थान नहीं घेरता, न दिखता है, न रूप, न रंग, न परिमाण, न बोझ।

शरीर :- भौतिक, दिखाई देता है स्थान घेरता व स्पर्श किया जा सकता है।

भौतिक का अभौतिक पर प्रभाव कैसे हो सकता है ? भौतिक पर अभौतिक से प्रहार कैसे हो सकता है, अगर शरीर तथा मन का एक-दूसरे पर प्रभाव दिखता है तो क्या यह संगत नहीं कि मन को शरीर का ही सूक्ष्म रूप मान लिया जाए।

भौतिकवादी मन की पृथक सत्ता से इन्कार करता है। शरीर एक स्वचालित यन्त्र है पैसा डालो टिकट निकल आयेगा मशीन के भीतर मन नाम की कोई वस्तु नहीं मनुष्य के शरीर की रचना इस प्रकार की है कि उद्दीपन होते ही अनुक्रिया अपने आप हो जाती है, इसे चलाने के लिए मन की आवश्यकता नहीं।

शरीर के सब स्थानों में तन्त्रिकाएँ हैं जो संवेदनावाहक कहलाती हैं, अंगुली में काँटा चुभने पर मस्तिष्क के केन्द्र में संवेदन, तन्त्रिकाओं द्वारा यह सन्देश कि हाथ हटा लो और काँटे को निकाल दो हाथ तक पहुँच जाता है। मन दिखता नहीं सारी प्रक्रियायें मस्तिष्क द्वारा अपने आप हो जाती है। भौतिकवादी दृष्टिकोण का

विश्लेषण है कि भौतिक मन ही दूसरा मस्तिष्क है। भौतिकवाद से समस्या ज्यों की त्यों बनी है।

मशीन में पैसा डालने पर वही टिकट बाहर निकलेंगे जो पहले से ही डाल रखे हैं। मशीन के लिए चुनाव की कोई बात नहीं होती और न ही सोचकर उत्तर देने की बात है। तोल की मशीन से मक्खन की टिकिया नहीं टिकट ही निकलेंगे। हाथ में काँटा चुभने पर जरूरी नहीं कि हम अपने हाथ को तुरन्त हटा लें। उदाहरण - व्यक्ति पेड़ की एक शाखा पकड़े हैं दूसरे हाथ पर ततैया बैठ गयी सोचकर कार्य करेगा।

मनुष्य के भीतर कौन है जो यह चुनाव करता है कि यह करूँ या वह अभौतिक को भौतिकवादी मानता नहीं लेकिन यहाँ उसने मशीन में सोचने की बात कही नहीं वह भौतिकवादी से अभौतिकवादी बन जायेगा। मस्तिष्क में एक स्थल मानना पड़ता है जहाँ पर मस्तिष्क अपना काम किसी अभौतिक तत्व के हाथ में छोड़ देता है, यह अभौतिक तत्व से निर्णय पाकर काम करने लगा है, यही अभौतिक तत्व मन है।

मस्तिष्क को मन या चेतना का आश्रय स्थल तो माना जा सकता है मगर मन नहीं, जैसे खूंटी पर कोट है, खूंटी कोट नहीं। नदी का पाट टेढ़ा-मेढ़ा भले है। टेढ़े रास्ते पर चलें परन्तु इससे नदी और नदी का पाट एक नहीं हो जाते।

भौतिकवादी के अनुसार अभौतिक का भौतिक पर प्रभाव नहीं पड़ता। शरीर के बाहर मन की सत्ता न माने तो कोई शंका न होगी। अध्यात्मवादी के अनुसार प्रेम, द्वेष, इच्छा, आकांक्षा, विचार, आशा, निराशा, उत्साह ये सब जो अदृश्य, अभौतिक तत्व हैं, जिनका नाप तोल नहीं, जो दिखायीं नहीं देते, इनका मनुष्य के शरीर पर उसकी हर प्रकार की गतिविधि पर अमिट छाप है कैसा ही स्वस्थ शरीर हो एक अदृश्य विचार मनुष्य को एक दम पागल बना देता है। उम्र भर का बना बनाया स्वास्थ्य धरा रह जाता है। देशभक्ति जैसे भाव से प्रेरित युवक हँसता-खेलता फाँसी पर झूल जाता है। प्रेम के भंग होने पर विष खाकर प्राण त्याग देता है। शरीर पर इन अभौतिक तत्वों का प्रभाव कैसे होता है, यह रहस्य की बात तो हो सकती है, मगर यह घटनाएँ होती हैं इनमें कोई सन्देह नहीं। शरीर तथा मन एक दूसरे से इस प्रकार बँधे हैं कि एक की दूसरे के बिना सत्ता समझ में नहीं आती यही कारण है कि भौतिकवादी शरीर में ही सब कुछ सिद्ध करना चाहते हैं।

भौतिकवाद से समस्या ज्यों की त्यों बनी रहती है। समस्या का सारा रूप यह है कि शरीर का संचालन कैसे होता है ? क्या शरीर के भीतर शरीर से पृथक मन जैसा कोई तत्व है जो शरीर का संचालन करता है।

अगर मस्तिष्क एक स्वचालित यन्त्र है तो बाहर से सन्देश आने पर उसे बना बनाया, पहले निश्चित किया हुआ उत्तर बाहर भेज देना चाहिए। तोल की मशीन सोचकर नहीं, बना बनाया उत्तर देती है जबकि अध्यात्मवादी के अनुसार मस्तिष्क में पहले से बना बनाया जवाब नहीं सोचकर देना पड़ता। (उदाहरण - एक व्यक्ति पहाड़ी से गिरा पेड़ की एक शाखा को हाथ से पकड़ लिया उसी समय दूसरे हाथ पर ततैया बैठ गयी अगर शाखा से हाथ हटाकर ततैया को हटाता है तो नीचे खाई में गिरेगा अगर वह नहीं हटाता तो ततैया काट लेगी मगर उसे सोच विचार कर निर्णय लेना है बिना विचार किए ततैया को हटाने के लिए पेड़ की शांखा नहीं छोड़ेगा जो तत्व विचार कर कार्य करता है वही अभौतिक तत्व मन है।

पितृ ऋण उतारना सुसन्तान का परम कर्म है। उसके उतारने के कई मार्ग हैं। अपनी सन्तान को सुयोग्य बनाना, गृहस्थ धर्म का पालन करना, कुल धर्मों को निभाना आदि कार्य पितृ ऋण उतारने के छोटे-छोटे भाग हैं, परन्तु सबसे उत्तम साधन पितरों (जीवित) को भगवान का नाम स्मरण कराना है, उन्हें आत्मचिन्तन कराना है। सन्तान का जन्म होते ही पितरों ने जो 'ओ३म्' नाम का दान दिया था, सो उनके सदा के प्रस्थान के समय यह 'ओ३म्' नाम बार-बार उनकी जीभ पर रखना चाहिए और उन्हें स्मरण कराना चाहिए।

प्रकीर्ण (तीर्थ)

आजकल नदियों के कारण बसे धार्मिक स्थान या किसी महापुरुष अथवा किसी घटना के कारण प्रसिद्ध हुआ स्थल 'तीर्थ' के नाम से पुकारा जाता है चाहें उससे किसी का उपकार हो या नहीं। उन नदियों में जाकर विशेष पर्वों पर स्नान करने से पाप से मुक्त हो जायेंगे ऐसी धार्मिक भावना प्रचलित है। वहाँ जाकर विशेष मन्नत मानना, प्रसाद चढ़ाना व बाँटना, या थोड़ा बहुत दान दे देना बस इतने में ही अपने कर्तव्य की इतिश्री समझ ली जाती है आध्यात्मिक लाभ हो या न हो परन्तु वास्तव में इन्हें तीर्थ नहीं कहा जा सकता तीर्थ उसे कहते हैं – "मनुष्य जिन्हें करके दुःखों से तरे," उनका नाम तीर्थ है। विदुर जी धृतराष्ट्र को समझाते समय बता रहे हैं वे कौन से तीर्थ है जिनमें स्नान करने वाला पुण्य कर्मा होता है।

आत्मा नदी भारत पुण्यतीर्था
सत्योदका धृतिकूला दयोर्मि
तस्यां स्नातः पूयते पुण्यकर्मा
पुण्योह्यात्मा नित्यमलोभ एव।।
(विदुर नीति ८/२१)

हे भरत कुलोत्पन्न धृतराष्ट्र ! यह आत्मा नदी रूप है, पुण्यकर्म इसमें घाट रूप हैं। सत्य उसका उद्गम स्थान है, धैर्य उसके किनारे है, दया उसकी लहरें हैं, ऐसी पवित्र तीर्थों वाली नदी रूप में स्नान करके पुण्यकर्मा पवित्र हो जाता है। क्योंकि पवित्रात्मा नित्य लोभरहित होता है।

यदि सन्त, साधु महात्मा, सज्जन विद्वान आदि घर आयें तो घर ही 'तीर्थ' बन जाता है। जब महर्षि विश्वामित्र महाराजा दशरथ के महल में पधारे तो दशरथ कहने लगे – "प्रभो आप के दर्शन से आज मेरा घर 'तीर्थ' हो गया। मैं अपने आपको पुण्य क्षेत्रों की यात्रा करके आया हुआ मानता हूँ।"

वस्तुतः मन का शुद्ध पवित्र होना ही सबसे बड़ा तीर्थ है, अतः इस मानस तीर्थ में जो स्नान करता है वह मोक्ष को प्राप्त होता है।

ज्ञानहदे सत्यजले राग द्वेष मलाप है
यः स्नाति मानसे तीर्थ स वै मोक्ष माप्नुयात्।।

ज्ञानरूपी कुण्ड है, उसमें सत्यरूपी जल है, जो राग द्वेष रूपी मल को दूर करने वाला है, ऐसे मानस तीर्थ में जो स्नान करता है, वह मोक्ष को प्राप्त होता है।

भूल

उसका स्मरण (आश्रय) ही अमृत है और उसको भूलना ही मृत्यु है। भूल करके भूल को भूलने पर भूल का फल भोगना पड़ता है। पहेली समझी जाने वाली भूल विस्मरण नहीं है, बल्कि वह कार्य है जो मनुष्य अनजाने में कर बैठता है, शास्त्रों में इसे अज्ञान कहा है जो अन्धकार के समान जीवन पथ को आवृत्त कर देता है। दिन के समय जब उजाला होता है उस समय नगीने में खिले फूल व झाड़ियाँ दिन के उजाले में बड़ी सुन्दर प्रतीत होती हैं, किन्तु अज्ञान व भय के कारण वही निशा के समय भयंकर प्रतीत होने लगते हैं। अन्धेरे के कारण वह सुन्दर स्थान नीरव लगता है। भय, भोग व भ्रम तीनों अज्ञान के पाश है। एक छोटा बच्चा अगर अपनी अज्ञानता के कारण सर्प को पकड़ ले या आग में हाथ डाल दे तो क्या सर्प और आग उसे बालक समझकर छोड़ तो नहीं देंगे उनका जो स्वभाव है डसना या जलाना वे अवश्य करेंगे इसलिए भगवान कृष्ण ने गीता में कहा है कि –

"अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभा शुभम"

किये गये सभी शुभ व अशुभ अच्छे या बुरे कर्मों का फल अवश्य भोगना पड़ेगा।

मनुष्य कर्म करने में स्वतंत्र है मगर फल भोगने में परतंत्र है लेकिन सबसे बड़ी भूल है जीवन-धन दाता ईश्वर को भूल जाना।

अथर्ववेद में कहा है – 'उद्यान ते पुरुषं नावयानम्' – हे जीव तेरा जन्म संसार में ऊपर उठने को है न कि पतन के लिए।

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्यवरान् निबोधत् – उठो जागो और श्रेष्ठ लक्ष्य प्राप्त करो। प्रभात वेला तुम्हें आगे बढ़ने को पुकार रही है। सूर्य की रश्मि आगे बढ़ने का सन्देश देती है। जीवन रूपी वाटिका को अपने पुरुषार्थ के पुष्पों से सजाकर मुस्कुराओ। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र, हर क्षण में हंसी आशा और विश्वास को जन्म देती है।

जीव परमात्मा से प्रार्थना करे कि जब जीवन के हर क्षेत्र से हरियाली सूख जाये अर्थात् प्रसन्नता समाप्त हो जाए और सभी सगे सम्बन्धी व मित्र साथ छोड़ जाएं तब हे मेरे देव मुझ पर ऐसी कृपा करना कि मैं संकट की घड़ी में कठिनाइयों को दूर भगा सकूँ।

मुस्कुराते हुए, "समय साधना का दीप जलाना ही परमात्मा की राह पर चलना है। जो परमात्मा को भूलकर पाप में लिप्त हो जाता है उसे सांसारिक सुख मिल जाने पर भी अशान्ति ही रहती है। जिसके द्वारा सृष्टि के प्रत्येक कण-कण में गति होती है उसका स्मरण कर्मों में श्रेष्ठता तथा दुखी जनों की सेवा है जो हृदय से प्रसन्नतापूर्वक समर्पण द्वारा विशेष भक्ति करता है वही उसका आश्रय, अमरता का साधन है। भूल ही मृत्यु है। मनुष्य जीवन में भूल हो जाना स्वाभाविक है लेकिन भूल करके भूल को भूल जाना सबसे बड़ी भूल है जो कभी मानव जीवन के विनाश का कारण बन जाती है। भूल को स्मरण रख पुनः वह भूल न करना ही जीवन का स्वर्णमय मार्ग प्रशस्त करती है।

य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः।
यस्य छायाऽमृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम।।
यजु० २५/१३

उस का स्मरण ही अमृत है और उसको भूलना ही मृत्यु है।

"वेदों की व्याख्या के विषय में मेरा पूरा विश्वास है कि चाहे इनकी अन्तिम व्याख्या कुछ भी हो, दयानन्द उसके सत्य सूत्रों के प्रथम आविष्कारक के रूप में स्मरण किये जायेंगे। यह दयानन्द की सत्य का साक्षात्कार करने वाली दृष्टि ही थी कि जिसने पुराने अज्ञान तथा लम्बे समय से चली आती नासमझी को बीच से चीरकर सत्य को सीधे देखा और अपनी दृष्टि को वहाँ पर (वेदों पर) केन्द्रित किया जो महत्त्वपूर्ण था। उसने उन द्वारों की कुञ्जी प्राप्त कर ली जिन्हें काल ने बन्द कर दिया था तथा अवरुद्ध निर्झरों के मुख पर लगी उस सील को तोड़ डाला जिसने वेदरूपी ज्ञानप्रवाह को रोक रखा था।"

—योगी अरविन्द

ब्रह्मचर्य

(वैदिक संस्कृति के सन्देश से साभार उद्धृत)

ब्रह्मचर्य मानव जीवन का आधार है। ब्रह्मचर्य का अर्थ है – मन तथा इन्द्रियों पर संयम रखना वीर्य आदि शारीरिक शक्तियों की रक्षा करना, वेदादि सत्य ग्रन्थों को पढ़ना तथा ईश्वर की उपासना करना। इन्द्रियाँ जाती है विषयों की ओर उन विषयों में जो रस है वह अल्प है, अल्प में सुख नहीं वह क्षणिक है। ब्रह्म का अर्थ बड़ा और चर्य का अर्थ विचरण करना, बड़ा विशाल इस शब्द से भारत का हर व्यक्ति परिचित है, अपने जीवन को छोटे से बड़ा बनाने का प्रयत्न करना मानवता और इन्सानियत का सम्बन्ध बनाये रखना यह ब्रह्मचर्य है।

आज का जीवन वासनामय हो गया है। सैक्स को खुला छोड़ देने के कारण अमेरिका में १२ से २४ वर्ष की आयु के व्यक्ति आत्मघात कर लेते हैं। 'फ्रायड' के अनुसार :- सैक्स दबाना नहीं चाहिए बल्कि सैक्स के विचारों को खुली छुट्टी मिलनी चाहिए। वैदिक संस्कृति ने सैक्स को सदा मार देने को नहीं कहा है प्रत्येक युवक के लिए गृहस्थाश्रम का विधान किया है।

भारतीय ऋषि सैक्स में नहीं डूबे थे राम ने लक्ष्मण को सुग्रीव द्वारा दिये जेवर दिखला कर पूछा क्या ये सीता के जेवर हैं ? लक्ष्मण कहते हैं ? मैंने कभी उनका मुख नहीं देखा मैं तो चरण वन्दन किया करता था इसलिए पावों के जेवर पहचानता हूँ।

ययाति नाम के राजा विषय भोग में लिप्त रहते थे। जब मरने का समय आया रोने लगे अब यह विषय भोग कहाँ मिलेगा ? पिता की यातना को देखकर बेटे ने अपना जीवन पिता को भेंट कर दिया। एक के बाद दूसरे अर्थात् सभी बेटों का जीवन खा गये परन्तु अन्त तक उनकी लालसा न मिटी – फ्रायड कितना ही जोर लगा ले यह फिर जाग उठती है।

नारद की कथा – एक बार नारद देवलोक जा रहे थे एक भक्त को तपस्या करते देख पूछा मैं देवलोक जा रहा हूँ अपने विषय में कुछ पूछना है तो पूछ। भक्त ने कहा मेरे खाते में देखना कि मेरी मुक्ति में कितने जन्म बाकी हैं दूसरा भक्त मिला उससे भी यही कहा दूसरे भक्त ने भी वही कहा। नारद जी जब वापिस आयें तो दोनों के बहीखाते देखकर आये थे। पहला व्यक्ति वासनामय है और दूसरा वासना हीन था

जिसकी मुक्ति में केवल एक वर्ष बचा था। नारद जी तो सदा उल्टी बात कहा करते थे। दूसरा व्यक्ति जिस की वासनाएँ क्षीण हो चुकी थी उसका एक यही जन्म शेष था मगर नारद ने कहा कि सामने इमली का पेड़ है इसमें जितने पत्ते हैं उतने तुम्हारे जन्म हैं वह प्रसन्न होकर नाचने लगा नारद ने प्रसन्नता का कारण पूछा – वह बोला मैं तो समझता था मेरे अभी अनगिनत जन्म है पर अब तो गिने जा सकते हैं इतने जन्म मुझे बिताने में कोई दुःख नहीं क्योंकि मेरी मानसिक स्थिति शान्त है। दूसरा भक्त जो वासना में लिप्त था उससे कहा तुम्हारी मुक्ति में यही जन्म शेष है उसने झट अपना आसन उठाया और चलने लगा। नारद बोले, कहाँ चले कहने लगा बाल बच्चों को मिलने जीवन का रस लेने क्योंकि इसके बाद रसों का आस्वादन करने का मौका नहीं मिलेगा।

हम संसार को भोगने आये हैं भोगे जाने के लिए नहीं। मालिक बनकर आये दास बनकर नहीं। इसलिए वैदिक संस्कृति के अनुसार हम अपनी इन्द्रिय रूपी घोड़ों को संयम की लगाम से पकड़े रहें जिससे हम काम वासना में न फँसे।

"कोई कितना ही करे, किन्तु जो स्वदेशीय राज्य होता है, वह सर्वोपरि उत्तम होता है। अथवा मत-मतान्तर के आग्रह रहित, अपने और पराये का पक्षपात शून्य, पुत्र पर माता-पिता के समान कृपा, न्याय और दया के साथ विदेशियों का राज्य भी पूर्ण सुखदायक नहीं है।"

—महर्षि दयानन्द

सामाजिक यज्ञ में पालन की जाने वाली मर्यादाएँ

सामाजिक यज्ञ में ७ मर्यादाओं का पालन करना आवश्यक है। और इन्हीं से विश्व का कल्याण होता है।

१. अपने से बड़ों का आशीर्वाद ले, वे सदा दीर्घ आयु को धारण करने वाला तेजस्वी व वर्चस्वी बनने का आशीर्वाद देते हैं। इन गुणों से युक्त होकर हम समाज व राष्ट्र का कल्याण कर सकते हैं।

२. सभी को प्रत्येक काम सोच-समझकर करना चाहिए, सहसा या बिना विचारे कार्य करने का परिणाम दुःख व निराशा और विनाश का कारण बनता है।

३. कभी दूसरे के बीच फूट मत डालो, कभी क्रोध में आकर आवेशित मत होओ। सदैव होश में रहो हो सकता है होश खोकर और आवेश में आकर हम ऐसा काम कर बैठे जो अहितकर हो।

४. बाँटकर खायें, किसी भी भौतिक सुख साधन व अन्न को बाँटकर प्रयोग करें। जो अकेले खाता है वह चोरी का खाता है। भगवान कृष्ण ने भी गीता में कहा है कि जो बिना खिलाए पहले स्वयं खा लेता है वह चोरी का खाता है, ऐसे व्यक्ति का साथ देवता भी छोड़ देते हैं।

५. पति-पत्नी, भाई-बहन सबको मिलकर एक साथ चलना चाहिए हमारे रास्ते अलग-अलग न हों। संगठन सूत्र में भी यही कहा गया है कि –

सङ्गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे सं जनाना उपासते।।
प्रेम से मिलकर चलो बोलो सभी ज्ञानी बनो।
पूर्वजों की भाँति तुम कर्तव्य के मानी बनो।।

६. घर में रहने वाले गृहस्थी हों या सन्यासी व वानप्रस्थी सब को आपस में मधुर व मीठी वाणी बोलनी चाहिए। कटुवाणी के दुष्परिणाम हम सभी जानते हैं, महाभारत का युद्ध इसका उदाहरण है।

७. संसार से वही मुक्त होकर जाएगा, जिसका न कोई बैरी है न कोई दुश्मन।

संसार में हमारा शत्रु कोई न हो यह केवल सामाजिक यज्ञ द्वारा ही सम्भव हो सकता है।

यज्ञ कुण्ड में अग्नि प्रज्ज्वलित होती है। घी को अच्छी तरह से तपाकर रखा जाए, उस घृत में इलायची लौंग या केसर डाल कर आहुति दे उसकी सुगन्ध चारों ओर फैल जायेगी। शत्रु भी निरोगी हो जायेगा इस प्रकार न चाहते हुए भी आप यज्ञ की सुगन्ध उसके पास जाने से नहीं रोक सकते इस प्रकार शत्रु का ऋण भी हम अपरोक्ष रूप से चुकता कर देंगे। यज्ञ से पवित्रता आती है।

इस प्रकार उपर्युक्त मर्यादाएँ हमारे जीवन का जब अनिवार्य अंग बन जायें तो समाज व राष्ट्र का कल्याण होता है और इनका उल्लंघन करने से कल्याण असम्भव है। हम स्वयं सामाजिक यज्ञ करें और दूसरों को करने की प्रेरणा दें।

कैसे लगे किनारे नैया, जिसका नाविक बहक गया हो।
कैसे समाज बढ़ेगा आगे, जिसका अगुआ भटक गया हो।।

"लोग कहते हैं कि सत्य को प्रकट न करो, कलैक्टर क्रोधित होगा, कमिश्नर अप्रसन्न होगा, गवर्नर पीड़ा देगा। अरे, चक्रवर्ती राजा भी क्यों न अप्रसन्न हो हम तो सत्य ही कहेंगे।"

—महर्षि दयानन्द बरेली में

आशा की एक किरण

टंकारा शतांक में 'अजय टंकारावाला' द्वारा टंकारा समाचार का सफल सम्पादक बनने में उनकी यात्रा का एक लेख और आर्य विद्वानों की शुभकामना सन्देश पढ़े। वास्तव में 'श्री महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मारक ट्रस्ट के प्रधानमंत्री व सभी ट्रस्टी व पदाधिकारी धन्यवाद के पात्र हैं जिन्होंने निःस्वार्थ भाव से तन, मन व धन का सहयोग कर अपने पुरुषार्थ व लग्न से विश्व के लिए वन्दनीय व दर्शनीय स्थल बना दिया। टंकारा ग्राम का प्रत्येक स्थान व केन्द्र आप के प्रयासों की 'सफल गाथा' मुक्त कष्ट से गा रहा है, जिसने 'अजय' जी को टंकारा वाला बना दिया। जिस प्रकार ऋषि की जन्मस्थली ऋषि भक्तों को समर्पित कर उन्हें भावविभोर किया। वैसा प्रशंसनीय कार्य करने की क्षमता से आर्य जनों के मानस पर आप को विशेष स्थान प्राप्त हुआ है। प्रतिवर्ष दूरस्थ व निकटस्थ स्थानों से ऋषिभक्त ऋषि बोधोत्सव पर अपने श्रद्धासुमन भेंट करने आते हैं, उसी प्रकार स्वामी तत्वबोध व अशोक आर्य तथा न्यास के सभी अधिकारियों के प्रयास से ऋषि की कर्मस्थली उदयपुर के "नवलखा महल" का सुन्दरतम निर्माण कर ऋषि के प्रति अपने कर्तव्यों का भाव प्रकट किया है। अजमेर जो ऋषि की निर्वाणस्थली है वहाँ भी प्रतिवर्ष ऋषि निर्वाण दिवस पर हजारों की संख्या में आर्य जन ऋषि के प्रति अपनी निष्ठा प्रकट करने आते हैं। प्रकृति की गोद में बने ये तीनों सुरम्य स्थान आर्यों के पवित्र तीर्थ धाम बन गये हैं। आर्यों का चौथा पवित्र धाम मथुरा जो ऋषि दयानन्द सरस्वती की निर्माण स्थली हैं, टंकारा, उदयपुर और अजमेर के समान मथुरा नगरी भी आर्यों की भावनाओं से जुड़ी है, आर्य विश्व के किसी भी देश में रहें वे अपने ऋषि के ज्ञानदाता 'गुरु विरजानन्द' को कैसे भूल सकते हैं, जिसने उन्हें ईश्वर के स्वरूप का ज्ञान कराया और वेदों का सूर्य बनाकर ऋषि के माध्यम सें वेदों का सन्देश घर-घर पहुँचाया ऐसे 'गुरु विरजानन्द' की कार्यस्थली के लिए भी समय-समय पर प्रयास अवश्य किये गये लेकिन पूर्ण रूप से सफल नहीं हुए 'अजय जी जैसे साहसी व कर्मवीर ही टंकारा से प्रेरणा लेकर 'गुरु विरजानन्द संस्थान' को भी आर्यों की धार्मिक व आध्यात्मिक गतिविधियों का केन्द्र बनाकर आर्य जनता का आशीर्वाद व स्नेह प्राप्त करें। अजय जी आपसे प्रार्थना है कि आपकी लेखनी इस कार्य को मूर्त रूप देने में सहायक होगी तदुपरान्त विश्वविख्यात हिन्दुओं के चार धामों के समान आर्यों के चार धाम ऋषि की यशोगाथा का केन्द्र बन जायेंगे। आशा है कि यह सुकार्य शीघ्र सम्पन्न होगा।

टंकारा का कर निर्माण बन गये तुम टंकारा वाले।
मथुरा का जो करे निर्माण बन जाये वह मथुरा वाला।।

आशा और निराशा

अथर्ववेद में कहा है कि हे मानव ! बीते हुए समय की स्मृतियों से निराश न हो ऐसे विचार जो तुम्हें निराशा के घेरे में ले उन्हें अपने मन में न आने दो।

"आरोह तमसा ज्योतिः" निराशा के अन्धेरे से आशा के उजाले की ओर चल परमात्मा तेरे परम सहायक होंगे।

जीवन आशा और निराशा का नाम है। जीवन एक नदिया है तो आशा और निराशा उसके दो किनारे हैं। व्यक्ति कभी हताश कभी निराश हो जाता है और कभी आशा और उत्साह से युक्त हो जाता है। हरी-भरी पत्तियों और तीखे काँटों के बीच अधखिली कली के होठों पर इसलिए मुस्कान है कि कल वह पूर्ण सुमन बन जायेगी। बसन्त ऋतु में जब कोयल मीठे स्वर में कू कू करती है तो उसके स्वर में जीवन और आशा की मधुर तानें भरी होती हैं, इसी प्रकार ऊँची उड़ान उड़ने वाले पक्षियों में जो मस्ती दिखाई देती है उसमें आशा ही बलवती होती है। निराशा तो जीवन का बन्धन है, दुख है एक जंजीर है। हममें से अनेक ऐसे मानव हैं जिनके जीवन में कोई आशा नहीं है, निराशा ही उनके बन्धन का कारण बनती है और निराशा के अन्धेरे से निकलने की कोई आकांक्षा नहीं होती।

हमारा अस्तित्व तो हमारी आत्मा है न कि यह शरीर। अगर आप शंकर बनना चाहते हैं और वासनाओं पर विजय न पा सके तो यह असम्भव है। आप दयानन्द बनना चाहे मगर सत्य के सामने कष्ट भोगने में आपकी आत्मा काँप जाए। गाँधी बनना चाहे मगर सत्य के प्रति आग्रह करने में झुक जाना पसन्द करेंगे तो दयानन्द व गाँधी बनना असम्भव है। जिसमें जीवन शक्ति अधिक है उस पर रोग के कीटाणु कोई प्रभाव नहीं डाल सकते। जिसकी जीवन शक्ति कमजोर है उसे रोग खा जायेगा जो व्यक्ति शक्तिहीन, दुर्बल, निराशावादी है वह कभी भी एक निष्ठ नहीं हो सकता न ही वह स्थिर रह सकता है। कभी उद्दण्ड व दुष्ट शक्तियाँ उसे अपनी ओर खींचेगी कभी वह देवत्व की ओर आकर्षित करेगी इसी खींचातानी में उसका अस्तित्व निखर जायेगा। आशा और निराशा में यही अन्तर है। आशा अगर विश्वास को जन्म देती है तो निराशा एक स्वप्न को जिसका कोई आधार नहीं जबकि आशा का आधार है। शक्तिहीन मनुष्य के समान खण्डहरों में ही निराशा की खाक उड़ा करती है, वहाँ मौत की काली व उदास छाया ही मण्डराती है, निराशा के तूफान में

बड़े-बड़े स्थिर पाँव डगमगाने लगते हैं। पहाड़ों से टक्कर लेने वाले निराशा से घिर कर दिल थाम कर बैठ जाते हैं। जवानी भी सफेद झण्डे दिखाकर निराशा के आगे घुटने टेक देती है। इसलिए आशा जीवन है और निराशा मृत्यु है। किसी ने सत्य ही कहा कि -

आशा का दामन जब छूटे, आये घोर निराशा।
बन जाये तेरा भी जीवन, आगे एक तमाशा।।

इसलिए जीवन में ऊपर उठने में आशा ही सहारा देती है और आशा के बल पर ही हम बाधाओं से पार निकल आते हैं। जब निराशा की बदली छटती है तभी आशा रूपी किरण में अपने उज्ज्वल भविष्य की रेखा दिखाई देती है।

इस संन्यासी के हृदय में यह प्रबल इच्छा और उत्साह था कि सारे भारतवर्ष में एक शास्त्र प्रतिष्ठित हो, एक देवता पूजित हो, एक जाति संगठित हो और एक भाषा प्रचलित हो। यही नहीं कि उनमें केवल सदिच्छा और उत्साह ही था, वरन् वह इस इच्छा और उत्साह को किसी अंश तक कार्य में परिणत करने में भी कृतकार्य हुए थे। अतएव महर्षि दयानन्द केवल संन्यासी ही नहीं थे, केवल वेद व्याख्याता ही नहीं थे, केवल शास्त्रों के मर्मोद्घाटन करने में ही निपुण नहीं थे, वह भारतीय एकता के स्थापनकर्ता भी थे, भारत की जातीयता (राष्ट्रीयता) के प्रतिष्ठाता भी थे। इसलिए भारत की आचार्य मण्डली में दयानन्द का स्थान विशिष्ट एवं अद्वितीय है।

—देवेन्द्र नाथ मुखोपाध्याय

भाग्य व पुरुषार्थ

प्र०. क्या भाग्यवादी होना पाप है ? भाग्य व पुरुषार्थ में अन्तर क्या है ?

उ०. भाग्य मानना पाप नहीं होगा क्योंकि बिना इसके कार्य चल नहीं सकता। महर्षि दयानन्द सरस्वती सत्यार्थ प्रकाश में लिखते हैं :-

यदि देश का दुर्भाग्य न होता तो यह अन्यों से पादाक्रान्ता न होता (भाग्य के भरोसे रहने के कारण हमने देश की रक्षा के लिए कर्म न करके, उसे गुलामी की जंजीरों में जकड़ दिया।)

वस्तुतः भाग्य और भोग्य में कोई अन्तर नहीं है। परमात्मा ने जो कर्मफल निश्चित किया है वही भाग्य है, भाग्य शब्द से घबराना नहीं चाहिए कुछ मनुष्यों ने इसे समझने में भूल की है जिसके कारण भाग्य को मानने से इन्कार कर देते हैं। भाग्यवादी भाग्य के भरोसे कर्महीन हो जाते हैं वे कर्म करने में भाग्य का झूठा बहाना बनाकर आलसी हो जाते हैं। भाग्य को मानने का यह अभिप्राय नहीं कि भविष्य के लिए कर्म ही न करें कर्म ही तो भाग्य को बनाते हैं। भाग्य का सम्बन्ध पूर्व कर्मों से है, सुख की प्राप्ति करने और दुःख से छूटने के लिए जीवात्मा मन, इन्द्रिय, शरीर से जो चेष्टा करता है वही कर्म है। कर्म ही तो भाग्य को बनाते हैं। भाग्य का सम्बन्ध पूर्व कर्मों से है आगामी कर्मों से नहीं। आगामी कर्म में मनुष्य स्वतंत्र है चाहे जैसा कार्य करे उनसे उसका भाग्य भविष्य में बनेगा, इसलिए भाग्य को मानना पाप नहीं है अपितु भाग्य के भरोसे रहकर अकर्मण्य बनना पाप है।

भाग्य मनुष्य का वह भोग है जो उसके कर्मों के अनुसार परमात्मा देता है, यह सारा संसार प्राणिमात्र के भोग के लिए बना है यह भोग हमारे पुरुषार्थ से ही बनता है।

मनुष्य पुरुषार्थ अच्छा करे या बुरा परन्तु पुरुषार्थ हो जाने पर उसमें वह कोई परिवर्तन नहीं कर सकता अतः कहा गया है कि मनुष्य कर्म करने में स्वतंत्र है और फल भोगने में परतंत्र।

प्रारब्ध और भाग्य

वैदिक धर्म पुर्नजन्म के सिद्धान्त को स्वीकार करता है अतः इस मान्यता के अनुसार मनुष्य पूर्व जन्म में जो शुभ अशुभ कर्म करता है उसका जो फल मिलता है वही प्रारब्ध कहलाता है। प्रारब्ध को हम स्वयं बनाते हैं ईश्वर नहीं बनाता अपितु वह तो पूर्वकर्मानुसार फल देता है इसी को भाग्य कहते हैं। जो पुरुषार्थ से ही अच्छा बुरा बनता है।

मान लीजिए पूर्व जन्म में हमने अच्छे कर्म किए और हमारा प्रारब्ध अच्छा बना यही हमारा सौभाग्य है। यदि बुरे कर्म किये थे तो प्रारब्ध भी वैसा ही बना, बुरा फल मिला, यही हमारा दुर्भाग्य है इसीलिए लोग इसे भाग्य कहते हैं। बच्चे का जन्म उसके प्रारब्ध के अनुसार सुख सम्पन्न या निर्धन घर में होता है। एक तो सोने के झूले में झूलता है एक सड़क पर सोता है।

एक तो झूले पर झूले है,
एक सड़क पर सोता है,
एक की सेज बनी फूलों की,
काँटों पर कोई रोता है।

अब इस जन्म में जो शुभ-अशुभ कर्म करते हैं वह अगले जन्म में हमारे अच्छे बुरे प्रारब्ध या भाग्य बनने में सहायक होंगे।

पुरुषार्थ प्रारब्ध से बड़ा इसलिए है क्योंकि इससे संचित प्रारब्ध बनते हैं जिसके सुधरने से सब सुधरते हैं और जिसके बिगड़ने से सब बिगड़ते हैं।

विभिन्न मतमतान्तरों ने पाप कर्मियों को पाप के फल से बचने के लिए व दुःखों से बचने के लिए अनेक नुस्खे बताये हैं किसी विशेष व्रत व दान आदि से दुःखों से बचा जा सकता है और पापों से मुक्त हो सकते हैं इन झूठे प्रलोभनों ने पापवृत्ति को बढ़ावा दिया जबकि वैदिक सिद्धान्त के अनुसार मनसा, वाचा, कर्मणा अर्थात् मन, वचन और कर्म से जो पाप आप ने किया है यहाँ तक कि मन में पाप का विचार किया उसका भी फल अवश्य मिलेगा - पाप से बचने के झूठे प्रलोभनों पर किसी शायर ने ऐसी मान्यताओं पर व्यंग किया है।

जब गुनाहगारों पे रहमत परवर दिगार
बेगुनाहगारों ने पुकारा – हम गुनाहगारों में हैं।

जब ऐसा माना जाने लगा कि परवरदिगार की गुनाहगारों पर रहमत (दया) है तो बेगुनाहों ने भी कहा कि हम भी गुनाहगार हैं।

भक्त सूरदास ने भी एक पद में कहा है –

"प्रभु मेरे अवगुण चित्त न धरौ
समदरसी है प्रभु नाम तिहारो अपने पनहि करौ।"

ऐसी विचारधारा मनुष्य को पाप करने की ओर प्रवृत्त करती है। यही कारण है कि आज सर्वत्र पापाचार और दुराचार की बाढ़ आई हुई है। यह एक सत्य और शाश्वत नियम है कि धर्माचरण का फल सुख और पापाचार का फल दुःख होता है, मनुष्य का मन एक प्रकार का खेत होता है और उसके विचार बीज रूप है, उसके कड़वे मीठे फल कर्त्ता को चखने पड़ते हैं वह अपने कर्म फल से न बच सका है और न किसी से बचाया जा सकता है। इतिहास इस बात का प्रमाण है कि बड़े-बड़े राजा-महाराजा तथा सन्त महात्माओं और योगी जनों को भी पूर्व जन्मों के कर्मों का फल भोगना पड़ा कर्मफल से वे भी अछूते नहीं रह सके।

यदि पूर्व कृत प्रारब्ध-कर्म प्रभाव डालने वाला न होता तो मनुष्य जिस-जिस प्रयोजन से कर्म करता वह सब सफल हो ही जाता।

"मैं यदि मुसलमान शासनकाल में होता, तब भी इसी प्रकार की बात कहता और यदि औरंगज़ेब की परम्परा का कोई शासक मेरा अनिष्ट चिन्तन करता तो मैं भी किसी शिवा, दुर्गादास अथवा राजसिंह जैसे क्षत्रिय को आगे कर देता, जो उसे सजा चखा देता।"

—महर्षि दयानन्द जोधपुर में

विचार

चेतना के सही प्रयोग में निहित है इच्छाओं की पूर्ति लेखक तिब्बती बौद्ध धर्म के कर्मापा काग्यू परम्परा के आध्यात्मिक प्रमुख कर्मापा त्रिनले थाए दोरजी। भौतिक सम्पत्ति की कुछ राशि उदाहरण स्वरूप, वे जो खाद्य पदार्थ, वस्त्र एवं आश्रय से सम्बन्धित है, हमारे जीवन के लिए आवश्यक है। प्रत्येक व्यक्ति को जीवित रहने के लिए कार्य करना पड़ता है परन्तु जब जीने के लिए आय प्राप्त करना ही एक मात्र केन्द्र बिन्दु तथा किसी के जीवन की प्राथमिकता बन जाती है, समस्या उदय होती है जब हम जीने के लिए आय करने की अपेक्षा आय के लिए जीने लगते हैं वहाँ अति लोभ की स्थिति (समस्या) हो सकती है। लोभ एवं आलस्य जैसे कुछ मानवीय छल पूर्ण तथ्य ही मूल समस्यायें हैं सभी की उत्पत्ति मूलभूत असमानता ही है जिस पर सब निबद्ध है। यह एक तत्व है कि आप की दैनिक आवश्यकताओं हेतु बस यथेष्ठ फसल उगाई जाए। परन्तु जब आप फसलों को एकत्रित करना प्रारम्भ करते हैं और यह सोचकर भण्डार करना आरम्भ करते हैं कि आपके पास कम कार्य एवं अधिक धन होंगे, यह अनियंत्रित लोभ के बीज को अंकुरित कर सकता है। अतः यह जरूरी हैं कि ऐसे कुछ छलों के विषय में जानकारी ली जाए जो कि कई समस्यांओं के कारक हैं। हमारा मस्तिष्क एक श्रेष्ठ सम्पदा है। उसके श्रेष्ठ प्रयोग एवं विकास का उपाय जान लिया जाये तो जीवन धन्य हो सकता है। ज्ञान का सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रकाश वही है जो कि हमें एक दयालु, भद्र, सम्मानीय बनाते हैं। ध्यान रहे कि हमें इन गुणों को अपनाने या रचना करने की आवश्यकता नहीं है। क्योंकि हम सभी में उनकी क्षमता सम्पन्नता पहले ही विद्यमान है इस प्रकार से, सम्पत्ति हममें से प्रत्येक के अन्दर यह गुप्त रूप से उपस्थित थे।

उत्तम विचार

१. सरलता के बिना कोई भी व्यक्ति अन्य आत्माओं का सच्चा स्नेह नहीं पा सकता।

२. जब कोई कार्य प्रेमभाव से किया जाता है तो उसमें तत्काल सफलता मिलती है।

३. दुखों से भरी इस दुनिया में वास्तविक धन सम्पत्ति धन नहीं सन्तुष्टता है।

४. किसी भी वस्तु की सुन्दरता, आपकी मूल्यांकन करने की योग्यता में छिपी हुई है।

५. सभी को साथी की आवश्यकता होती है, क्या मेरे पास किसी साथी के साथ बाँटने के लिए भरपूर प्रेम है।

६. परमात्मा से प्रेम करना समस्त मानव जाति से प्रेम करना है।

७. यदि हर कार्य यह समझ कर किया जावे कि भगवान मेरा साथी है, तो असम्भव कार्य भी सम्भव हो जाता है।

८. परीक्षा की घड़ी मनुष्य को महान बनाती है, विजय की नहीं।

९. स्वभाव को सरल बनाओ तो समय व्यर्थ नहीं जायेगा।

१०. धन कमाना बुरा नहीं है, धन का दुरुपयोग करना बुरा है।

११. सज्जनता की परीक्षा आप के व्यवहार से होती है।

१२. असत्यता पर आधारित सम्बन्ध रेत की नींव पर बने भवन के समान है।

१३. अगर हम सत्य से छिपते हैं तो इसका अर्थ है कि हम अवश्य ही असत्य का संग कर रहे हैं।

१४. बुराई का चिन्तन करने या बुराई से डरने से बुराई मन में घर कर जाती है।

१५. अपशब्द कहने का अर्थ यह है कि मुझमें इतनी सी अक्ल नहीं है कि मैं अन्य शब्दों का चयन कर सकूँ।

१६. यह संसार हार जीत का खेल है, इसे नाटक समझ कर खेलो।

१७. अपनी सूक्ष्म कमजोरियों का चिन्तन करके उन्हें मिटा देना यही स्व चिन्तन है।

१८. जैसे अहम भाव से घमण्ड पैदा होता है, वैसे ही विभ्रम मोह का परिणाम है।

१९. "सत्यकर्म" युद्ध-क्षेत्र में जीतने का पहला साधन है।

२०. स्वयं को ट्रस्टी समझकर चलो तो हल्के पन का अनुभव करोगे।

२१. जब हम क्रोध की अग्नि में जलते हैं, तो इसका अर्थ धुआँ हमारी आँखों में जाता है।

२२. शान्ति को बाहर खोजना व्यर्थ है, क्योंकि वह तो आपके गले में पहना हुआ हार है।

२३. जीते जी मरना सीख लो तो मृत्यु के भय से छूट जायेंगे।

२४. दिव्य गुण ही मानव का सच्चा श्रृंगार है।

२५. कभी-कभी सम्मान देना ही सबसे बड़ा योगदान सिद्ध होता है।

२६. यदि कोई आप पर हँसता है, तो खिन्न न हो, क्योंकि कम से कम आप उसे खुशी तो दे रहे हैं।

२७. कर्म इन्द्रियों पर राज्य करने वाला ही सच्चा राजा है।

२८. जब तक आप प्रयत्न करना बंद न कर दे, अन्तिम परिणाम घोषित नहीं किया जा सकता।

२९. एकाग्रता से ही सम्पूर्ण आनन्द प्राप्त हो सकता है।

३०. क्या आपको जीव रूपी वृक्ष का ज्ञान है या आप केवल इसकी टहनियों के नीचे ही खड़े हैं।

३१. कथनी और करनी में समरूपता रखना ही महान आत्मा का लक्षण है।

३२. जो सदा सन्तुष्ट है, वही सदा हर्षित एवं आकर्षण मूर्त है।

३३. परमात्मा को पाने के बाद कुछ पाने की आवश्यकता नहीं रह जाती।

३४. विशेषताएँ व गुणदाता की देन है, दाता को देखो व्यक्ति को नहीं।

३५. जन्म का अन्त है मृत्यु और मृत्यु का अर्थ है अन्त।

३६. ध्यान न देने की कमी से त्रुटियाँ होती हैं व तनाव पैदा होता है।

३७. हमारे वचन चाहे कितने भी श्रेष्ठ क्यों न हों परन्तु दुनियाँ हमें कर्मों के द्वारा पहचानती है।

३८. कभी भी आशा न छोड़े - आशा एक ऐसा पथ है - जो जीवन भर आपको

गतिशील बनाए रखता है।

३६. यदि आप गपोड़शंख लोगों के साथ हो जाते हो तो उनकी निन्दा के अगले पात्र आप ही होगे।

४०. जिस बात से अपना विवेक, संयम, संतुलन और सन्तुष्टता का गुण अपनाने से महान बन जाएंगे।

४१. समय ही जीवन है, समय को बर्बाद करना अपने जीवन को बर्बाद करने के समान है।

४२. कभी भी आशा न छोड़े, आशा एक ऐसा पथ है जो जीवन भर आपको गतिशील बनाए रखता है।

४३. गुण चोर बनो तो सब अवगुण रूपी चोर भाग जायेंगे।

४४. आशीर्वाद प्राप्त करना हो तो पुण्यात्मा बनो।

४५. किसी दूसरे व्यक्ति की आलोचना करने से पहले अपने अन्दर झांककर देख लेना चाहिए।

४६. कभी भी आशा न छोड़े, आशा एक ऐसा पथ है जो जीवन भर आपको गतिशील बनाए रखता है।

४७. जैसा लक्ष्य रखेंगे वैसे लक्षण स्वतः आयेंगे।

४८. इच्छाएँ रखने वाला कभी अच्छा कर्म नहीं कर सकता।

४६. मुस्कुराना सन्तुष्टता की निशानी है, इसलिए सदा मुस्कुराते रहो।

५०. सत्य को सांसारिक आतंक डरा नहीं सकता।

५१. आप आपमें विशेष हैं। इसलिए अपने सत्य स्वरूप का आनन्द ले।

५२. यदि आप हिम्मत का पहला कदम आगे बढ़ाएंगे तो परमात्मा की सम्पूर्ण मदद मिल जायेगी।

५३. सत्य के सूर्य को कभी असत्य के बादल ढक नहीं सकते।

५४. सरलता से महान सौन्दर्य होता है, जो सरल है, वह सत्य के समीप है।

५५. मोहजीत अपनी देह से भी नष्टोमोह होते हैं।

५६. परमात्मा ने हमें खुशबूदार फूल बनाया है, क्या हम यह खुशबू सब तक फैला सकते हैं।

५७. सच्ची सेवा वह है जिसमें सर्व की दुआओं के साथ खुशी की अनुभूति हो।

५८. असत्यता पर आधारित सम्बन्ध रेत के भवन के समान है।

५९. सरलता के बिना कोई भी व्यक्ति अन्य आत्माओं का सच्चा स्नेह नहीं पा सकता।

६०. जब कोई कार्य प्रेमभाव से किया जाता है तो उसमें तत्काल सफलता मिलती है।

६१. ईश्वर से बुद्धि की लगन लगाना ही ईश्वर का सहारा लेना है।

६२. किसी भी वस्तु की सुन्दरता आपकी मूल्यांकन करने की योग्यता में छिपी हुई है।

६३. अपनी सूक्ष्म कमजोरियों का चिंतन करके उन्हें मिटा देना - यही स्व-चिंतन है।

६४. यदि हर कार्य यह समझकर किया जाये कि भगवान मेरा साथी है तो असम्भव कार्य भी सम्भव हो जाता है।

६५. आपस में एक दो की विशेषताओं का वर्णन करो, कमियों का नहीं।

६६. देश और समाज की सभी समस्याओं का हल है पवित्रता।

६७. सम्पूर्ण अहिंसा अर्थात् संकल्प द्वारा भी किसी को दुख न देना।

६८. किसी पर कुदृष्टि रखना भी पाप है, इसलिए आँखों को शीतल बनाओ।

६९. गम्भीरता का गुण धारण कर लो तो व्यर्थ टकराव से बच जायेंगे।

७०. विशेषताएं व गुण - दाता की देन है, दाता को देखो व्यक्ति को नहीं।

७१. अगर हम सत्य से छिपते हैं तो इसका अर्थ है कि हम अवश्य ही असत्य का संग कर रहे हैं।

७२. बुराई का चिन्तन करने या बुराई से डरने पर बुराई घर में मन कर जाती है।

७३. सम्पूर्ण ब्रह्मचर्य ही सम्पूर्ण अहिंसा है।

गायत्री अनुष्ठान

कर्म योगी कहते हैं कि कर्म करो। भगवान है या नहीं इस झमेले में न पड़ो, इससे कुछ नहीं मिलने वाला। भक्ति योगी कहते हैं कि नाम भजते रहो, यही सबसे बड़ा कर्म है।

परन्तु निरा नाम भजन तो आलस्य, अकर्मण्यता का ही प्रच्छन्न है और इसीलिए अति भयंकर है।

दूसरा भक्तिहीन जो कर्म है वह चाबी-हीन घड़ी के समान है। एक बार घड़ी खड़ी हो जाए तो कौन चलाये ? भक्तिहीन कर्मयोग भी भारी मूर्खता है, कर्म शक्ति का भण्डार तो है मगर हम उससे लाभ नहीं उठाते।

भगवान अपने भक्तों में बुद्धि की प्रेरणा देता है मगर भक्त वह नहीं जो आलसी व अकर्मण्य हो। "धियो यो नः प्रचोदयात्"। हम उसका ध्यान करें जो हमारी बुद्धि और कर्म को प्रेरणा देता है, यह भक्ति योग है मगर यह प्रेरणा आलसी या प्रमादी को नहीं मिलती, परन्तु जो निरन्तर कर्म में लगे रहते हैं उन्हें प्रेरणा मिलती है यही कर्म योग है।

प्रभु को अपने में धारण करना, यह सर्वश्रेष्ठ कर्म है। धारण करने का अर्थ है हम सूर्य और चन्द्र के समान कल्याण के मार्ग पर चले। जिस प्रकार सुन्दर शासन-व्यवस्था में सूर्य चन्द्रादि देव उस प्रभु की आज्ञानुसार चलते हैं और हम भी उसकी आज्ञानुसार अपने जीवनरूपी रथ को चलाने में समर्थ हुए हैं उतने अंश तक ही हमने परमात्मा के मार्ग अर्थात् देव मार्ग का अनुसरण किया है बस अनुसरण का जो कर्म है वही मनुष्य को प्रभु से प्रेरणा लेने का अधिकारी बनाता है। इस प्रकार धीमहि (धारण करें) कर्म योग और धियो यो नः प्रचोदयात् में समर्पण और भक्ति योग का अद्‌भुत समन्वय है। यह देवों के अनुसार ज्ञान, प्रयत्न और सुख इन तीन अंगों में बंटा है। हमें परमात्मा ने सुख स्वरूप बनाया है इसलिए ऐसा प्रयत्न करना चााहिए अथवा आचरण करना चाहिए। हमने ठीक ज्ञान प्राप्त किया या नहीं इसका प्रमाण है क़ि हमने पूर्ण सुख प्राप्त किया या नहीं बस यह ज्ञान भूः है और प्रयत्न भुवः है और सुख स्वः है।

बस इस भूः भुवः स्वः का ही संक्षिप्त रूप 'ओ३म्' है। ध्वनिमात्र का आदिमूल 'अ' और स्थान कण्ठ है। मध्य 'उ' ओष्ठ स्थान और मुख का मध्य है,

'म' सब संगीतमय ध्वनियों का अन्त है और सच पूछिये तो ध्वनि मात्र का अन्त है क्योंकि यही एक अक्षर है जो मुख बन्द करके बोला जा सकता है। इसलिए यह समाप्ति का सूचक है और मधुर होने के कारण संगीतमयता का सूचक है। इसलिए स्वः अर्थात् परमसुख का प्रतीक है। यदि इनमें से एक ही अंग का अभ्यास करें तो मनुष्य को पूर्ण परिपाक न होगा यह तभी सम्भव है जब भू-र्भुव स्वः का समन्वय होगा। इसलिए उस समन्वय को भर्गः ठीक परिपाक करने वाला कहा गया है। लेकिन इसे तभी पूर्ण रूप से धारण किया गया समझना चाहिए। जब तक स्वादुत्तम अन्न के समान आग्रहपूर्वक वरण करके खाया जाये। जो खिन्न मन से जैसे-तैसे गले के नीचे उतार लिया जाता है वह धकेला गया भले ही हो मगर 'वरेण्यम्' नहीं हो सकता वह स्वाद भी साधारण नहीं अलौकिक है जिसे तत् कहकर अनिवर्चनीयता का रूप दे दिया जाये।

इस मन्त्र में परमात्मा को 'सविता' नाम से पुकारा गया है इसलिए इस गायत्री को सावित्री कहा गया है। सविता का अर्थ है शासन का स्रोत, सु का अर्थ है शासन करना, सविता का अर्थ हुआ शासन करने वाला। राष्ट्र में जब राजा राज्य के नियमों का निर्माण करता है तब 'सविता' जब दण्ड देता है तब यम, जब अधिकारों का निर्णय करता है तब अयर्मा, जब शक्ति दिखाता है तब इन्द्र कहलाता है परन्तु इन्द्र को भी शासन सत्ता 'सविता' से प्राप्त होती है ऋग्वेद में स्पष्ट शब्दों में कहा है – सविता ने राज्य को नियन्त्रित करने वाले नियमों से धरती को रमणीय बना दिया है। बस यह नियम बनाने वाला ही सविता रूप हैं

हम भू र्भुवः स्वः स्वरूप ओ३म् सविता रूप जो 'वरेण्यम्' है सदा धारण करें, जिससे समर्पण की भावना पूरी हो और वह हमारी बुद्धियों को युक्त मार्ग पर चलाये।

श्री हरिओम चौधरी
श्रीमती नीरज चौधरी
(दामाद एवं पुत्री)

चि० विशाल बजाज
सौ० स्वीना
पौत्र निमित

डॉ० संदीप बजाज
एवं सौ० रुचि बजाज
पौत्र चि० दिव्याँशु, चि० सुशान्त

चि० राजीव बजाज
एवं सौ० सीमा बजाज
पौत्र चि० निश्चय बजाज

लेखिका परिचय

नाम	:	श्रीमती कृष्णा बजाज
पति का नाम	:	श्रीमान सत्यपाल बजाज
जन्मतिथि	:	3.3.1940
जन्मस्थान	:	जिला गुजरात (वर्तमान में पाकिस्तान में हैं)
शिक्षा	:	एम.ए., हिन्दी प्रभाकर। वर्तमान में डॉ0 सोमदेव शास्त्री (मुम्बई) द्वारा संचालित स्वाध्याय पत्राचार पाठ्यक्रम में ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद सन्देश की परीक्षा और छः दर्शन सन्देश की परीक्षा उत्तीर्ण की।
कार्यभार	:	दिल्ली में दयानन्द आदर्श विद्यालय, आर0 एस0 माडल हाईस्कूल लुधियाना में तथा 1974 से 2005 तक लक्ष्मीनारायण कन्या इण्टर कॉलेज, बरेली (जो वर्तमान में जूनियर हाईस्कूल है) में अध्यापिका का कार्य किया।
सामाजिक कार्य	:	आर्यसमाज अनाथालय, बरेली में अधिष्ठात्री, बिहारीपुर स्त्री समाज में मन्त्राणी के पद पर रही। वर्तमान में आर्यसमाज मॉडल टाउन की संरक्षिका हैं।
सम्मान	:	सर्वश्रेष्ठ अध्यापिका का सम्मान उत्तर प्रदेश एजूकेशन सोसाइटी द्वारा तथा लक्ष्मी नारायण कन्या इण्टर कॉलेज, आर्यसमाज बिहारीपुर, महिला आर्यसमाज बिहारीपुर, मॉडल टाउन व भूड़, बरेली द्वारा समय-समय पर समाजसेविका के रूप में सम्मानित।